CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत की मौलिक एकता

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

8.2

भारत की मौलिक एकता

from Brajesh

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकोपयोगी सामाजिक विज्ञान

भारत की मौलिक एकता

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

National Book Trust, India

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस दुर्लभ पुस्तक का पहली बार प्रकाशन सन् 1954 में 'भारतीय-भंडार, इलाहाबाद' ने किया था। यह संस्करण अब उपलब्ध नहीं है।

ISBN 978-81-237-7980-5

पहला संस्करण : 2017 *(शक 1938)*

© देव कुमार अग्रवाल

Bharat ki Moulik ekta (*Hindi original*)

₹ 150.00

निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन
5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 द्वारा प्रकाशित
www.nbtindia.gov.in

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय संस्कृति के परम आदर्श

महामना श्री पंडित मालवीय जी को
सादर समर्पित

काशी में गंगा-तट पर स्थापित उनके विश्वविद्यालय में ही मेरा इन भावों से प्रथम बार परिचय हुआ।

—वासुदेवशरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रम

भूमिका	नौ
युक्तियाँ	1
देश का नामकरण	7
भूमि-परिचय	20
पृथ्वी सूक्त	38
तीर्थ और पुण्य-क्षेत्र	54
आर्थिक और भौतिक जीवन	74
जन	84
भारत और साहित्य	95
राजनीति के क्षेत्र में देश की एकता	111
उपसंहार	125
परिशिष्ट	129

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूमिका

भारतवर्ष प्राचीन देश है। वह अपने जन और संस्कृति के नूतन विकास का साक्षी बनकर आज भी जीवित है। उसका मन विश्व के प्रति स्वच्छ है आज ही नहीं, सदा की उसकी यही परम्परा है। देश और भूमि के विषय में उसके सात्विक भाव संसार के लिये भी मूल्यवान् हैं। स्वयं भारतवासियों को अपने नवोदय के समय में उनसे परिचित होना जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। भूमि की शक्ति एक ओर, और जीवन की अन्य सब समृद्धि और वैभव दूसरी ओर रखकर यदि तोल दिये जाएं तो भूमि के समान जनता को एक सूत्र में बांधने वाली दूसरी कोई शक्ति नहीं है। भूमि की इस आध्यात्मिक प्रेरणा-शक्ति का मूल्य हम सबको नई आँख से फिर पहचानना चाहिए।

यदि भूमि की एकता की संजीवनी शक्ति न हो तो क्षुद्रता के भाव हमारे मनों को दबोच लें और सामूहिक जीवन के टुकड़े-टुकड़े कर डालें। सामूहिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन है। एक भूमि, एक राष्ट्र, एक जन, यही नए जीवन का महान् सत्य है; इसके विपरीत अन्य सब मिथ्या है। भूमि की एकता अनमोल वरदान है। इस ऐक्य का गंगाजल ही हमारे राष्ट्रीय दोषों को हटा सकता है, इसके प्रोक्षण से हमारे विचारों की संकीर्णता मिट सकती है। राष्ट्र के नागरिक के चलने का निर्भय राजमार्ग भूमि की एकता पर दृढ़तया आश्रित अखंड राष्ट्र है। जिस क्षण भी हम एकदेशीय होकर सोचने लगते हैं और एक छोटे गाँव, जनपद प्रान्त या प्रदेश के हितों को महाभूमि के हितों से अलग मानकर कार्य करते हैं, उसी क्षण हम अपनी मातृभूमि और महान् राष्ट्र का मानसिक खंडन कर डालते हैं। प्रत्येक पृथ्वी-पुत्र नागरिक का कर्तव्य है कि सब प्रकार राष्ट्र का संवर्धन करे, न कि अपने द्वारा थोड़ा भी राष्ट्र या भूमि का विघात होने दे।

इस समय भारतीय राष्ट्र के सामने इस महापृथ्वी की एकता का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी की ही आध्यात्मिक शक्ति राष्ट्र है। मातृभूमि के जाग्रत्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चैतन्य का रूप राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीयता की प्रेरक शक्ति से ही जन या नागरिक बनते हैं। जिस व्यक्ति के मन में राष्ट्रीयता का अंकुर नहीं है वह राष्ट्र के लिये निरुपयोगी है। राष्ट्र का जो निखरा हुआ रूप भविष्य में बनेगा उसमें ऐसे बुझे हुए व्यक्ति का कुछ उपयोग नहीं जिसके मन में मातृभूमि के प्रेम या राष्ट्रीयता का अमृत प्रवेश नही पा सका।

आज इस दुःखद तथ्य से हमारे राष्ट्रीय संगठन को पद-पद पर जूझना पड़ रहा है कि भारतीय भूमि की एकता के अर्थ और उसकी आवश्यकता को हम जीवन से ओझल कर रहे हैं। कहीं भाषाओं के भेद फूट डाल रहे हैं, कहीं प्रादेशिक सीमाएँ रगड़ का कारण बनती हैं, कभी जात-पांत और प्रांतीयता की दुस्सह चिनगारियाँ हमारे पारस्परिक ऐक्य को झुलसाकर राख कर देती हैं। जब मनुष्यों के मनोभाव इस प्रकार क्षुद्रता के शिकार होते हैं तब राष्ट्र-यज्ञ का कोई कार्य आगे नहीं बढ़ जाता। मातृभूमि की मौलिक और अनिवार्य एकता ही वह वेदि है जिसमें डाली हुई राष्ट्रीय यज्ञ की आहुति राष्ट्र के अधिदेवता तक पहुँचती है; नहीं तो हमारे सारे कर्म और प्रयत्नों का फल बीच में ही पारस्परिक कुचक्र हड़प लेते हैं, वह भस्म में हवन करने की तरह निष्फल चला जाता है।

कौन सी वह युक्ति है जिससे हम अपनी इस क्षुद्रताओं को जीत सकेंगे? किस भाँति हमारे मनों में सबसे पहला स्थान भारतभूमि को मिल सकेगा? उक्त प्रश्न हमें बार-बार झकझोर रहे हैं। सबके हित और अपने हित के लिए भी हमें इनका समाधान करना चाहिए। राष्ट्रीय एकता की अनुभूति से ही हम अपनी तंग दुनिया से छुटकारा पा सकते हैं। इस युग में जो राष्ट्र के साथ एक नहीं हुआ उसके लिए शोक है। जब किसी क्षुद्र मन वाले व्यक्ति को राष्ट्र की लोकव्यापी एकता के साथ मिलने का अवसर प्राप्त होता है, तो उसका उद्धार राष्ट्रीयता की पवित्र शक्ति स्वयं कर लेती है।

भूमि की मौलिक एकता कोरा स्वप्न है यदि जन की एकता और संस्कृति की एकता के साथ उसका मेल नहीं हो सका। वह निर्माण का कार्य तभी कर सकती है, जब एक राष्ट्रीयता के साथ उसका अभिन्न और सच्चा संबंध हो। प्रांत, धर्म, जाति, भाषा—इनमें से कोई भी वस्तु राष्ट्र से ऊपर नहीं है; अतएव राष्ट्र में सबका अंतर्भाव है। इसमें से किसी एक बात का आग्रह लेकर यदि हम एक राष्ट्र के साथ टकराते हैं, तो कशमकश उठ खड़ी होती है। आज के युग में इस तरह की खींचातानी बहुत तरह से सिर उठाती रहती है, उससे हमें निपटना होगा।

भारत की मौलिक एकता को श्रद्धापूर्वक मानने और उसके अनुसार आचरण करने की जितनी आवश्यकता इस समय है, उतनी पहले कभी नहीं हुई। यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह कहा जाए तो भी सच है कि आज के भारतवासी नागरिक के लिए इस एकता की पूर्ण सिद्धि के अतिरिक्त ऊपर उठने का और कोई मार्ग है ही नहीं। यदि भारत की एकता सुरक्षित है, तभी राष्ट्र जीवित रहेगा।

यह मौलिक एकता इतिहास के दीर्घकालीन उतार-चढ़ावों के भीतर पिरोई हुई मिलती है। भूमि की एकता ने ही राष्ट्रीय संस्कृति को बचाए रखा, अन्यथा घटनाओं के बवंडरों से सभी कुछ चकनाचूर हो गया होता। आज देश का एक भारी बटवारा हो गया है, पर हमारे मनों में आपसी भेदभाव उत्पन्न करने वाले विचारों का अंत अब भी नहीं हुआ है। उस बड़े धक्के से चोट खाए हुए राष्ट्र का संतुलन अभी तक नहीं हो पाया है। यद्यपि राजनीति की घटनाओं ने हमें एक राष्ट्र का अंग बना दिया है, किंतु विचारों के जगत् में हमारा हृदय मातृभूमि के हृदय के साथ अभी तक एक नहीं हो सका है। इसी कारण अब भी मध्यकालीन मनोवृत्ति से हम अपने भेदों की बात अधिक सोचते रहते हैं। ये भेद उग्र रूप से प्रकट होकर जीवन में कटुता उत्पन्न कर देते हैं और पारस्परिक संप्रीति और समन्वय का नाश कर जनता में विरोध बढ़ाते हैं।

देश की मौलिक एकता का प्रश्न हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है। उस पर शांत मन से विचार करना हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। इस विषय में हमारे इतिहास और अतीत जीवन की जो सामग्री है, उस पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। भारतीय संस्कृति को विश्व के इतिहास में समन्वय का एक महान् प्रयोग कहना चाहिए। अनेक प्रकार के अनमिल तत्त्वों ने यहाँ एक साथ मिलकर रहने की पद्धति स्वीकार की और भेदों की अपेक्षा साम्य को आगे रखकर यहाँ के मनुष्यों ने परस्पर मैत्रीभाव और सहिष्णुता के कितने ही मूल तत्त्वों को खोज निकाला। आज भी विश्व के लिए और हमारे लिए उनका मूल्य है। चोटी तक पहुँचने के अनेक मार्ग हो सकते हैं। यद्यपि सत्य का शिखर एक है, परंतु मनुष्यों ने रुचि-भेद से वहाँ तक जाने के अनेक मार्गों का आविष्कार किया है। भारतीय पद्धति उन सबको आदर के योग्य समझती है। जीवन में इस सत्य का अनुभव हमें एक दूसरे के दृष्टिकोण के प्रति सहिष्णु बनाता है। सहिष्णुता ही संस्कृति प्रधान मानव का सबसे बड़ा गुण है। सहिष्णुता के मार्ग पर चल कर ही युग-युगों के संघर्ष को पार करते हुए हम सांस्कृतिक एकता के समीप पहुँच सके थे।

भारतीय जीवन में हमें सब प्रकार की विविधता मिलती है। भेदों से यहाँ के मनुष्य परेशान हुए। अपनी बुद्धि से बाहरी भेदों के पर्दे में छिपी हुई आंतरिकएकता को उन्होंने ढूंढ निकाला। संस्कृति का सूत्रपात्र करते समय ही उनका ध्यान इस तथ्य की ओर गया था। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में भूमि के विषय में लिखा है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जन विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथ्वी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य में दुहां ध्रुवेव घेनुरनपस्फुरंती ।

—(अथर्व. 12/2/45)

यह पृथ्वी अनेक भाषाओं के बोलने वाले, अनेक धर्मों के मानने वाले, विविध प्रकार के जन को धारण करती है। इसमें स्पष्ट ही भाषा, धर्म और जन इन तीन तत्वों के भेद को स्वीकार किया गया है। लगभग पाँच सहस्र वर्ष या उससे भी अधिक समय से हमारी मातृभूमि की यह स्थिति रही है। किंतु इन सबको एकता के अखंड सूत्र में बाँधने वाला सर्वोपरि प्रधान तत्व स्वयं मातृभूमि है। उसकी सत्ता ध्रुव धेनु के तुल्य अडिग है। भेदों के बीच में भी उसे प्रकम्प नहीं होता। वह सब पुत्रों के लिए समान रूप से दूध रूपी वरदानों का सहस्रधार झरना बहाती रहती है। सब उसके साथ माता-पुत्र के बंधन में बंधे हैं। माता का पुत्र के साथ संबंध प्रकृति की सबसे महत्त्वपूर्ण सत्यात्मक घटना है। वहीं से जीवन का सोता फूटता है। मातृभूमि के साथ जन का यह संबंध अविचल, त्रिकाल में अबाधित, नित्य नए-नए रूपों में विकसित होने वाला स्वयं सिद्ध सत्य है। सहस्रों रूपों में पनपने वाली इस एकता की खोज ही प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है। एक मूलतत्त्व का अनेक रूपों में बखान, यही हमारे राष्ट्र का मूल दृष्टिकोण या बीजमंत्र है—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति। —(ऋग्वेद 1/234/!46)

इस देश के बुद्धिमान् समाज-निर्माताओं ने इतिहास के उपःकाल में ही अपने राष्ट्रीय तोरण पर समयाय का यह बीजमंत्र लिख दिया था। इस ललाटलिपि से ही भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। अनेक रूपों में और जीवन अनंत क्षेत्रों में यह एकता विकसित हुई है।

भारत की मौलिक एकता का अध्ययन मेरे गुरुवर्य श्री डॉ. राधाकुनुद मुकर्जी ने 'दी फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया' नामक अपनी अंग्रेजी पुस्तक में सर्व प्रथम 1913 ई. में प्रस्तुत किया था। उनके तर्कों की सच्चाई का सर्वत्र स्वागत हुआ, और एक प्रकार से यह तथ्य राष्ट्रीय इतिहास के सर्वमान्य सत्य की तरह स्वीकार कर लिया गया। उनके प्रदर्शित मार्ग से, किंतु परिवर्द्धित सामग्री द्वारा, यह इस विषय का हिंदी भाषा से प्रतिपादन है।

काशी विश्वविद्यालय

—वासुदेवशरण

गंगा दशमी संवत् 2010

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-1

युक्तियाँ

(1) समान मातृभूमि ही राष्ट्र की जननी और प्रथम धात्री है। राष्ट्रीय चैतन्य या उद्‌बोधन का स्रोत मातृभूमि का हृदय है। जन का भूमि के साथ अभिन्न संबंध माता और पुत्र का प्राकृतिक नित्य संबंध है। मातृमान् व्यक्ति वह है जो भूमि के साथ माता-पुत्र के संबंध का अनुभव करता है। मातृमान् हृदय में ही मातृभूमि और राष्ट्र की अनंत शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं और निवास करती हैं।

(2) भारतवर्ष में अनेक प्रकार की विविधताएँ भी पाई जाती हैं। प्रथम तो, यह भौतिक और सामाजिक विविधता राष्ट्रीय जीवन की बहुविध समृद्धि और संपत्ति है। दूसरे, भारतीय राष्ट्र-निर्माताओं ने इस अनेकता के मूल में निहित एकता पर ही सदा बल दिया है। भारतीय संस्कृति के समस्त विकास का मूल इस विचार में है कि एक ही तत्व अनेक रूपों में प्रकट होता है और अनेक नामों से पुकारा जाता है–

एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति।

(3) मातृभूमि की यह मौलिक एकता प्राचीन साहित्य में उपलब्ध देश के नामकरण से भी विदित होती है। भारतवर्ष नाम सूचित करता है कि यह सारा भूखंड एक ही वृष्टि-संस्थान के अंतर्गत उत्पन्न मेघ-मालाओं और वायु-समूह के अंतर्गत है जो एक दूसरे के साथ संबंधित हैं और दक्षिण के समुद्रों और उत्तर के हिमालय से नियंत्रित होते हैं। इस वृहत् वर्पण-क्षेत्र की ही प्राचीन संज्ञा 'भारतवर्ष' थी।

(4) महाभारत के भूमि-संकीर्तन में सारे देश को भारतवर्ष कहा गया है–

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्ष भारत भारतम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतवर्ष के पर्वत, नदी और जनपदों का विस्तृत परिचय एकता की सर्व-सम्मत भावना और देश की भौगोलिक इकाई को प्रमाणिक करता है। महाभारत, पुराण, काव्य आदि में जहाँ-जहाँ भारतवर्ष का भौगोलिक वर्णन पाया जाता है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र हिमालय से समुद्र पर्यंत भूंखड की इकाई स्वीकार की गई है। यह भौगोलिक युक्ति बहुत ही पुष्ट प्रमाणों पर आश्रित है।

(5) मातृभूमि को महती देवता मानकर उससे मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने का भाव भारतीय साहित्य में अत्यंत प्राचीनकाल से पाया जाता है। धार्मिक साहित्य की भूमि-वंदनाओं में भारतभूमि को स्वर्ग और मोक्ष दोनों का कारण कहा गया है। कालिदास के अनुसार इसी भूमि पर समृद्ध राष्ट्र सच्चा इंद्रपद या स्वर्ग है–

ऋद्धं हि राज्यं पदमैंद्रमाहुः। (रघु. 2/50)

(6) अथर्ववेद का पृथिवीसूक्त (12/1/1/63) भारतीय राष्ट्रीयता का गान है। इसमें देशप्रेम या राष्ट्रीयता के भारतीय दृष्टिकोण की व्याख्या की गई है। इसके अनुसार **'माता भूमिः पुत्रो अंह पृथिव्याः'** की दृढ़ प्रतीति राष्ट्रीयता की नींव है। जन और पृथ्वी के संबंध का बीज यही भाव है। इस सूक्त में अनेक प्रकार की विविधता को मानते हुए उनके भीतर व्याप्त एकत्व की ओर ध्यान दिलाया गया है। भूमि और जन का संबंध भौतिक तो है ही, उससे कहीं अधिक आध्यात्मिक है।

(7) भारतीय जन का विस्तार देश की चारों खूंटों तक फैला हुआ है। यह जन समवाय-प्रधान जीवन-मार्ग का अनुगामी रहता आया है। अशोक जैसे महान् सम्राटों ने पारस्परिक मेल-जोल, प्रीति और सहानुभूति पूर्ण एकत्व को विभिन्न वर्गों के लिए जीवन का श्रेष्ठ मार्ग बताया था–

समवाय एवं साधु

यही भारत के ऐतिहासिक विकास को समझने की कुंजी है। यहाँ समवाय की ऐतिहासिक धारा विरोधों पर सदा विजयशालिनी रही है। समवाय की विचार-पद्धति अन्य सब विचारों से बलवती रही है। उसी ने भारत के लंबे इतिहास के समस्त राजनैतिक और सांस्कृति विकास को नियंत्रित किया है और उन्हें एक सूत्रता में आबद्ध होने के मार्ग पर आगे बढ़ाया है।

(8) भारतीय जन की देशव्यापी संस्कृति के अनेक रूपों में भेद की अपेक्षा साम्य अधिक है। उनमें ऐसी एकता है जिनके कारण भारतीय संस्कृति संसार की अन्य संस्कृतियों से अलग पहचानी जाती है। भारतीय धर्म, साहित्य, लिपि,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कला, वेश, पर्व, उत्सव, आदि जीवन के प्रत्येक अंग पर भारतीयता की विशिष्ट छाप है जो उसके स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व को प्रकट करती है। भारतीय संस्कृति ने बाहरी प्रभावों का स्वागत करते हुए भी अपना विशिष्ट रूप सुरक्षित रखा है। दूसरी ओर देश के भीतर की विभिन्न जीवन विधियों में खुलकर आदान-प्रदान हुआ है। यद्यपि अनेक धर्म, भाषाएँ और लिपियाँ हैं, किंतु उनमें मौलिक ऐक्य है। भारतीयकरण की बलवती प्रक्रिया सूक्ष्म रूप से सब पर अपना प्रभाव डालती रही है। उसकी मौलिक प्रवृत्ति यह है कि समवाय के साँचे में प्रत्येक नए रूप को ढालकर उसे अपना बना लिया जाए। यही संस्कृति की जीवनी शक्ति है। विपरीत परिस्थितियों से यह कुंठित नहीं होती, वरन् उन्हें अपने वश में लाकर उस पर अपना रंग चढ़ा लेती है। राष्ट्र की यह जीवनी शक्ति उसकी सांस्कृतिक अमरता है।

(9) जीवनी शक्ति का यह विधान सब के अपने-अपने ढंग से जीवित रहने और पनपने की स्वंतत्रता पर आधारित है; इसीलिए इसका सबसे अविरोध रहा है और सब पर इसकी विजय हुई है।

जहाँ कई संस्कृतियाँ एक साथ मिलती हैं, वहाँ यही समन्वयात्मक दृष्टिकोण उचित और सब के लिए हितकारी होता है। भारत का यह समवाय प्रधान दृष्टिकोण विश्व के सांस्कृतिक संघर्ष का एकमात्र समाधान है, अतएव संसार के लिए आज इसका सब से अधिक मूल्य है। जाति, धर्म, भाषा, कला, दर्शन आदि के क्षेत्र में भारतवर्ष के सांस्कृतिक प्रयोग मानव जाति के लिए मार्गदर्शन हैं। भारत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला का अमृत फल 'समन्वय' विश्व के लिए कल्याणकारी है।

(10) भारतीय भाषाएँ पारस्परिक आदान-प्रदान के द्वारा एक दूसरे के साथ संबंधित हैं। आर्य, द्रविड़, निषाद वर्ग की भाषाओं का स्वतंत्र अस्तित्व होते हुए भी उनके भीतर गहरा संबंध है।

(11) उनकी लिपियाँ भी एक मूल ब्राह्मी लिपि से विकसित होने के कारण एक दूसरे के निकट हैं।

(12) देश की सांस्कृतिक एकता की सबसे पुष्कल अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य में पाई जाती है। संस्कृत साहित्य और संस्कृत भाषा समस्त राष्ट्र की मान्य संपत्ति हैं। संस्कृत साहित्य राष्ट्रीय साहित्य है जिसने अन्य सब प्रादेशिक साहित्यों को प्रेरित, विकसित और अनुप्राणित किया है। संस्कृत भाषा तो प्रांतीय भाषाओं की जननी ही है। उसके महत्त्व के संबंध में गाँधीजी ने लिखा था—'संस्कृत हमारी भाषा के लिए गंगा नदी है। मुझे लगात है कि वह सूख जाए तो भाषाएँ निर्माल्य बन जाएंगी।' रामायण, महाभारत, गीता, वेदांतसूत्र, वेद और पुराण—ये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय साहित्य के सार्वभौम अमर झरने हैं। इनके द्वारा भारतीय ज्ञान का मेघ जल सर्वत्र बरसता रहा है।

सारे देश में एक युग में एक सी साहित्यिक शैली प्रचलित मिलती है। साहित्यिक अभिव्यक्ति के प्रकार भी देश-भर में एक में से रहे हैं। सूत्र, भाष्य, चूर्णि, टीका, संग्रह, काव्य, नाटक, कथा, आख्यायिका आदि के रूपों में देशव्यापी एकता पाई जाती है।

(13) भारतीय शिक्षा-पद्धति में सर्वत्र एक समानता थी। शास्त्रीय शिक्षण में गुरु-शिष्य की प्रणाली देश भर में मान्य थी। वैदिक काल से उन्नीसवीं सदी तक वह चालू रही। समान पाठ्य ग्रंथों के द्वारा इस पद्धति की एकता का अतिरिक्त परिचय मिलता है। पाणिनि की अष्टाव्यायी और पंतजलि का महाभाष्य कश्मीर से कन्याकुमारी तक व्याकरण की शिक्षा के मुख्य साधन थे। उनकी टीकाओं की देश-व्यापी मान्यता होती थी। कालिदास के ग्रंथ और पंचतंत्र भी इस शिक्षा संबंधी एकता के प्रतीक हैं। राज्य प्रणाली चाहे जो रही हो, विद्वान् और शास्त्रीय साहित्य देश में सर्वत्र आदर पाते थे। काशी, तक्षशिला, मथुरा, नवद्वीप, उज्जयिनी, कांची, नालंदा आदि विख्यात विद्यापीठों में चारों दिशाओं के छात्र अध्ययन के लिए एकत्र होते और वहाँ से ज्ञान का प्रवाह देश भर में अबाध रूप से फैलता था।

(14) देश की एकता का स्थूल रूप में प्रत्यक्ष सिद्ध प्रमाण कला और स्थापत्य में पाया जाता है। युगक्रम के अनुसार एक जैसी कला-शैली देश में व्याप्त पाई जाती है। मूर्तियों के निर्माण में प्रायः एक से लक्षण और ध्यान सर्वत्र मिलते हैं। भारतीय मूर्तिकला और प्रतिमाओं, जैसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, बुद्ध, तीर्थंकर, देवी, आदि के रूपों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी देशव्यापी परिषद् ने उन्हें सबके लिए स्थिर किया हो। कला के अलंकरण और अभिप्राय जैसे कमल, पूर्णघट, स्वस्तिक, धर्मचक्र, कल्पवृक्ष आदि भी सर्वत्र एक जैसे हैं। उनकी भाषा भारतीय है, और जहाँ तक भारतीय कला का विस्तार मिलता है, हम सर्वत्र कला की परिभाषाओं में एकरूपता पाते हैं। पर्वतों में टंकित गुहा-मंदिरों और पाषाण निर्मित मंदिरों की वास्तु शैली में किंचित् प्रांतीय विशेषताओं के साथ अद्भुत सार्वदेशिक समानता पाई जाती है। तीर्थयात्रा के द्वारा इस कलागत एकता को सब प्रांतों के निवासी अपनी आँखों से देखते थे।

(15) देश मे सर्वत्र फैले हुए तीर्थस्थान और पुण्यक्षेत्र मातृभूमि की मौलिक एकता के प्रमाण हैं। उत्तर के अमरनाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ और कैलास-मानसरोवर से लेकर दक्षिण में समुद्र तट पर स्थित कन्याकुमारी और सेतुबंध रामेश्वर तक, एवं पश्चिम में हिंगुलादेवी से पूर्व में कामाक्षा देवी तक तीर्थस्थानों का जाल सा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिछा हुआ है। भू-सन्निवेश के पहले प्रतीक तीर्थ थे; वे संस्कृति के वितरण केंद्र हुए। भूमि को अपना बनाने के लिए उसके प्रत्येक भाग का नामकरण किया गया। चारों दिशाओं में संस्कृत के स्थान नामों का ताना-बाना पूरा हुआ है। मध्य-एशिया, अफगानिस्तान, सिंध, बलूचिस्तान, कश्मीर, हिमालय, प्राग्ज्योतिष और दक्षिण भारत में संस्कृत स्थान-नामों के नियम और रूप एक जैसे हैं। साथ ही उनमें स्थानीय भाषागत विशेषताएँ भी पाई जाती हैं।

तीर्थों के द्वारा भूमि को देवत्व प्रदान किया गया। शिव, विष्णु, देवी, यक्ष, नाग, बुद्ध, तीर्थंकर आदि से संबंधित तीर्थ देश भर में फैले हुए हैं। तीर्थों के रूप में मातृभूमि के धार्मिक स्वरूप की समग्रता और अखंडता का विश्वास प्रत्येक संप्रदाय में पाया जाता है। उस रूप को अपनी आँखों से देखने और उसे अपनी श्रद्धा अर्पित करने की युक्ति तीर्थयात्रा में मिलती है। तीर्थयात्रा भारतीयों के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण प्रेरक शक्ति है। उसकी सहायत से देश के विभिन्न भाग एक दूसरे का अत्यन्त निकट परिचय और सम्मान प्राप्त करते आए हैं। प्रांतीय दूरी और पृथकता को हटाने में तीर्थयात्रा द्वारा सबसे अधिक सहायता मिली। तीर्थयात्रा के कारण संस्कृति की धाराएँ एक छोर तक फलती रहती थीं। लाखों-करोड़ों मनुष्यों के लिए देश की एकता तीर्थों के रूप में प्रकट हुई। तीर्थों को धर्म और संस्कृति का विद्युत्-भंडार ही कहना चाहिए।

(16) धर्म के क्षेत्र में भी मातृभूमि की व्यापक एकता के दर्शन होते हैं। शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि देवता, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों, उनके पार्श्वचर और वाहन—इनकी देशव्यापी मान्यता मौलिक है। संस्कार, कर्मकांड, लोक-परलोक की श्रद्धा, इनमें भी सर्वत्र एकता है। जप-तप व्रत-पूजा-उपवास के विधि-विधान जिनके द्वारा प्रत्येक देश में जनता का धार्मिक जीवन पल्लवित होता है, भारतीय एकता को व्यक्त करते हैं। साधु, संत, आचार्य, महात्मा प्रांतीय सीमाओं से ऊपर रहते हुए जनता का पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं। शंकर, रामानुज, वल्लभ, नानक, चैतन्य, तुलसीदास, रामदास आदि संत और धर्मोपदेष्टाओं को समस्त देश अपना मानता है। उनकी धार्मिक और नैतिक भाषा को सर्वत्र स्वागत मिलता है।

(17) भारत के दार्शनिक जगत् में विचारों का विस्तृत आदान-प्रदान हुआ है। ज्ञान, उपासना, भक्ति और कर्म के जितने दृष्टिकोण कई सहस्र वर्षों में विकसित हुए, उन पर सारी जनता अपना सामान्य अधिकार मानती है। वे एक देशीय नहीं, सार्वदेशिक हैं। षड्-दर्शन, उपनिषद्, श्रुतियाँ, पुराण, संतमत—इनसे समस्त राष्ट्रीय जन को युग-युग में चेतना मिली है। ये ही हमारे धार्मिक साहित्य की राष्ट्रीय निधियाँ हैं। वेदांत और भक्ति, ज्ञान और उपासना, ब्रह्म और जीव, माया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और प्रकृति, बंधन और मुक्ति—इन तत्वों के संबंध में सारा देश एक साथ विचार करता रहा है। इनके द्वारा लोगों के मन में एक गूढ़ एकता छाई हुई है। यद्यपि उनके मुख की भाषाएँ भिन्न-भिन्न हैं, किंतु उनके मन की भाषा एक है, उनके विचारों में सर्वत्र रहस्यमयी एकता है जो असीम है, जो स्वयं वृद्धिशील है और जिसका किसी प्रकार निराकरण नहीं किया जा सकता। सारे भेद मिलकर भी इस आध्यात्मिक ऐक्य को नहीं मिटा पाते। जिस प्रकार ईंधन के भीतर अग्नि छिपी रहती है, जिस प्रकार श्वेत फेनिल दुग्ध के भीतर मक्खन व्याप्त रहता है, उसी प्रकार भारतीय मानस में धार्मिक और दार्शनिक विचारों की एकता व्याप्त है। उसे जब चाहे प्रकट किया जा सकता है। अनेक संत और आचार्य, महात्मा और उदारदर्शी नेताओं ने भारत के जन-मानस या राष्ट्रीय चैतन्य को मथकर इसी गूढ़ एकता को समय-समय पर प्रकट किया है। उनके आह्वान से आत्मा की यह एकता ऊपर आ जाती है; जनता के मन का गूढ़ ऐक्य उनकी पुकार से उद्‌बुद्ध रूप में प्रत्यक्ष दीखने लगता है। भारतीय इतिहास में इस प्रकार की हिलोरें सदा उठती रही हैं। निष्पक्ष दृष्टि से देखने वाले अनेक पश्चिमी और भारतीय विद्वान् भारत की इस मौलिक एकता से प्रभावित हुए हैं। एक एकता भारतीय जीवन का पुराना रहस्य है, यह हमारे इतिहास की पुण्य शोभा है। इससे विपरीत विचार पद्धति दूषित है जिससे राष्ट्रीय जीवन का उत्तम तेज मंद पड़ जाता है—

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्

—(अथर्व 7/115/4)

'जीवन की पुण्य शोभा हमारे यहाँ फैले, उसकी कुरूपता दूर हो।' जब प्रत्येक व्यक्ति का मन उमंग कर राष्ट्रीय मन के साथ एकता प्राप्त करना चाहेगा और सबकी उन्नति में हम अपनी उन्नति समझेंगे तभी जीवन की यह शोभा हमें मिलेगी। मातृभूमि की सच्ची वंदना ही हमारे राष्ट्रीय उद्‌बोधन का नया मंत्र है—

नमो मात्रे पृथव्यै,
नमो मात्रे पृथिव्यै।
नहि माता पुत्रं हिनत्ति
न पुत्रो सातरम्॥

मातृभूमि को प्रणाम। मातृभूमि को प्रणाम माता पुत्र का नाश नहीं करती। पुत्र भी माता की हिंसा न करे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-2

देश का नामकरण

इस देश का नाम भारतवर्ष है। समस्त भूमि के लिए एक नाम उसकी एकता का प्रतीक है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी और भूमि या माताभूमि शब्द ही मिलते हैं। किंतु महाभारत और पुराणों में सारे देश के लिए भारतवर्ष नाम प्रचलित हो गया था।

इस विषय में महाभारत के भीष्मपर्व में एक अत्यंत काव्यमय भारत प्रशस्ति पाई जाती है। एक प्रकार से यह भारतीय भुवनकोष (भीष्म पर्व अ. 9) की भूमिका है, जिसके श्लोकों में प्राचीन वैदिक छंदों की गूँज सुनाई पड़ती है–

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्ष भारत भारतम्।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च॥5॥
पृथोस्तु राजन्वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः।
ययातेरम्बरीवस्य मान्धातुर्नहुषस्य च॥6॥
तथैव मुचुकुन्दस्य शिवेरौशीनरस्य च।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्यया॥7॥
कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः।
लोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च॥8॥
अन्येषां च महाराजा क्षत्रिप्राणां वलीयसाम्।
सर्वेषामेव राजेद्र प्रियं भारत भारतम्॥9॥

संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं–

'हे भारत, अब मैं तुमसे उस भारतवर्ष का बखान करता हूँ जो भारत देवराज इंद्र को प्यारा था; जिस भारत को विवस्वान् के पुत्र मनु ने अपना प्रियपात्र बनाया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे राजन्, आदि राज वेनपुत्र पृथु ने जिस भारत को अपना प्रेम अर्पित किया था; महात्मा इक्ष्वाकु की जिस भारत से हार्दिक प्रीति थी;

प्रतापी ययाति और भक्तवर अंबरीष, त्रिलोकविश्रुत सांधात और तेजस्वी नहुष जिस भारत को अपने हृदय में स्थान देते थे; सम्राट् मुचुकुंद और औशीनर शिवि, ऋषभ ऐल और नृपति नृग जिस भारत को चाहते थे;

हे दुर्धर्ष, महाराज कुशिक औ महात्मा गाधि, प्रतापी सोमक और व्रती दिलीप जिस भारत के प्रति भक्ति रखते थे, उसे मैं तुमसे कहता हूँ।

हे महाराज, अनेक बलशाली क्षत्रियों ने जिस भूमि को प्यार किया है, तथा और भी समस्त जनता जिस भारत को चाहती है;

हे भरतवंशी राजन्, उस भारत देश का मैं तुमसे बयान करता हूँ। इस भारत वंदना में जिस चक्रवर्ती राजर्षियों के नाम हैं वे स्वयं देश की एकता के प्रतीक थे और हमारे राष्ट्रीय इतिहास के ऊँचे शिखर हैं। उन्हीं की परंपरा में और भी कितने ही नाम जोड़े जा सकते हैं। मंवादि राजर्षि बिना कारण भारतवर्ष को प्यार करने वाले न थे। इस भूमि की सभ्यता का उपकार करने के लिए उन्होंने कुछ सोच कर ही अपने जीवन का भरपूर दान दिया था। उन पुण्यात्माओं के चरित्रों से यह पृथ्वी धन्य हुई। उनके स्थापित आदर्श भारत देश के जयस्तंभ हैं। वे इसकी संस्कृति को आज भी रस प्रदान करते हैं। भारतीय इतिहास में एकता के मनोबल को उत्पन्न करने वाले जो वेग हैं उनके साथ इन नामों का संबंध है।

ये लोग अपने भौतिक सुखों के कारण भारतवर्ष के अनुरागी न थे। वे यहाँ के आध्यात्मिक आदर्शों के प्रेमी थे। शिवि और दिलीप इस मातृभूमि पर सत्य और धर्म के प्रकाशस्तंभ छोड़ गए हैं। सारा देश उनकी ओर देखकर उनसे प्रेरणा प्राप्त करता है। महाभारत के कवि की दृष्टि में इन राजाओं के प्रचीन युगों में देश की संज्ञा भारत थी और उनकी प्रीति भारत के साथ थी। स्थूल संबंधों की अपेक्षा नित्य सूक्ष्म संबंधों की ओर ध्यान खींचना कवि के शब्दों का प्रयोजन है।

समग्र मातृभूमि पुण्यभूमि है और वही भारत है। विष्णु पुराण में स्वर्ग और मोक्ष इन दोनों की प्राप्ति के साधन भारत का गान किया गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्हास्पद हेतुभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

—(विष्णु. 2/3/24)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहते हैं देवता भी स्वर्ग में यह गान करते हैं—"धन्य हैं वे लोग जो भारत-भूमि के किसी भाग में उत्पन्न हुए। वह भूमि स्वर्ग से बढ़कर है, क्योंकि वहाँ स्वर्ग के अतिरिक्त मोक्ष की साधना की जा सकती है। स्वर्ग में देवत्व भोग लेने के बाद देवता मोक्ष की साधना के लिए कर्मभूमि भारत में फिर जन्म लेते हैं।"

ऊपर के वाक्य में एक बड़ी सच्चाई है। स्वर्ग की कल्पना तो संसार के अनेक देशों में हुई, किंतु मोक्ष की कल्पना भारतीय दर्शन की निजी विशेषता है। मातृभूमि के लिए यह अद्भुत कल्पना है। यहाँ पुण्यचरित्र और धार्मिक जीवन की साधना के सब द्वार खुले हैं जिनसे स्वर्ग तो मिल ही सकता है, किंतु स्वर्ग सुख भोग की इच्छा से ऊपर उठकर मनुष्य मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य भी प्राप्त कर सकता है। स्वर्ग और अपवर्ग भारतीय जीवन के दो आदर्श हैं, राष्ट्रीय संस्कृति के ये दो नेत्र हैं। कालिदास की परिभाषा के अनुसार सब प्रकार से सुखी और समृद्ध राज्य धरती पर स्वर्ग है—

ऋद्धं हि राज्यं पदमैन्द्र माहुः

—(रघु. 2/50)

'सब प्रकार के भौतिक सुखों से भरा-पुरा राज्य महीतल पर इंद्र का पद स्वर्ग है।'

किंतु भारत के सूक्ष्मदर्शी विचारवान् पुरुषों ने समस्त भौतिक सुखों की प्राप्ति से भी ऊँचे नित्य सुख की कल्पना की और उसमें ही जीवन का सार माना। वह स्थिति भौतिक सुखों के त्याग से उत्पन्न होती है। जो त्याग प्रसन्न मन से, एवं आनंद से भरे हुए चित्त के स्वाभाविक वैराग्य से किया जाता है, वही मोक्ष है। मानव के लिए स्वर्ग और मोक्ष के आदर्श ये ही हैं। सब भौतिक सुख और समृद्धि से संयुक्त राष्ट्र की उपलब्धि स्वर्ग है, और उन सुखों का त्याग मोक्ष है। जो संस्कृति इस मार्ग को सिखाती है वही भारत की संस्कृति है। देश के सभी भाग उसके अंतर्गत हैं। इसीलिए कहा गया 'धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे'। भारत के किसी भी भाग में मनुष्य जन्म ले स्वर्ग और अपवर्ग वाली संस्कृति से उसका जन्मसिद्ध नाता जुड़ जाता है। यहाँ यह नहीं कहा गया कि देश का एक प्रदेश या एक प्रांत या एक नगर मोक्ष-प्रधान संस्कृति का अधिकारी है, बल्कि देश का प्रत्येक भाग मातृभूमि के सत्यात्मक हृदय के साथ मिला हुआ है। सभी को संस्कृति की वेगवती धाराएँ प्राप्त हुई हैं। सुदूर मलैबार के शंकरचार्य, तमिल के कम्वन, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, असम के शंकरदेव, आंध्र के पोतनामात्य, बंगाल के चैतन्य, उत्तरापथ के वाल्मीकि और तुलसीदास, बिहार के बुद्ध और महावीर, राजस्थान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की मीराबाई, कश्मीर की लल्लेश्वरी, गुजरात के नरसी मेहता, पंजाब के गुरुनानक, इन सबकी सांस्कृतिक भाषा एक है। यद्यपि उनका जन्म भारतभूमि के भिन्न-भिन्न भागों में हुआ, पर जीवन का तप और त्याग प्रधान मार्ग उन सब का एक है।

ऊपर के इन दो उद्धरणों से ज्ञात होता है कि हम जिस सांस्कृतिक मातृभूमि की कल्पना करते हैं वही भारत भूमि है। किंतु देश के नामकरण का एक भौतिक पक्ष भी है। उसका स्पष्टीकरण भी पुराणों में मिलता है। नीचे लिखा हुआ भौगोलिक सूत्र इस देश के स्थूल रूप की परिभाषा प्रकट करता है—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत्।
वर्ष यद् भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा[1]॥

—(वायु. 45/75)

समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का जो भू-खंड है, वह भारत है और इसमें रहने वाली जनता भारती प्रजा है। दक्षिण और उत्तर की भौगोलिक सीमाओं का और भी नुकीला संकेत इस श्लोक में पाया जाता है।

आयतो ह्याकुमारिक्यादागंगा प्रभवाच्च वै।[2]

—(वायु. 45/81)

कन्याकुमारी से लेकर गंगा के उद्गम स्रोत तक फैली हुई भारतभूमि है। कुमारी अंतरीप भारती का दक्षिणी छोर है, उसके बाद भारतीय समुद्र का विस्तार है जिसके उत्तर में यह देश है। 'जिसकी भूमि उसका समुद्र'—इस ध्रुव नियम से भारत देश के नामकरण का अनुगामी दक्षिणी समुद्र भारतीय महासागर कहलाता है। इस महासागर के पूर्वी भाग का पुराना नाम महोदधि है जिसे अब बंगाल की खाड़ी कहने लगे हैं। इसके पश्चिमी भाग का नाम रत्नाकर है जिसे अब अरब सागर कहा जाता है। दक्षिण में जहाँ ये समुद्र हैं वहाँ आज भी ये पुराने भौगोलिक नाम मिले थे। कालिदास ने इन दोनों नामों का ठीक इन्हीं समुद्रों के लिए प्रयोग किया है। रघु की पूर्व-यात्रा के प्रसंग में कहा गया है कि वे अपनी सेना के साथ महोदधि के किनारे जा पहुँचे[3]। इसी प्रकार पुष्पक पर चढ़कर लंका से लौटते हुए राम ने रत्नाकर को स्वयं देखा और सीता को उसे दिखाया[4]।

पूर्व के महोदधि और पश्चिम के रत्नाकर समुद्रों का जहाँ संगम है उसके समीप ही कुमारी अंतरीप है। इसे कन्याकुमारी कहते हैं। कन्याकुमारी नाम बड़ा सार्थक है। तप करती हुई कुमारी पार्वती का यहाँ समुद्र तट पर एक मंदिर है। अखंड ब्रह्मचर्यव्रत धारण किए हुए वे पार्वती क्या सोच रही हैं? वे उन शिव के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान में अहर्निश लीन हैं जो उत्तर में हिमाचल के देवदारु वन की वेदिका पर समाधि में बैठे हुए हैं। देश के दक्षिण-उत्तर के दो बिंदुओं में संततचारिणी प्राण-धारा के प्रतीक शिव-पार्वती हैं। देश की भूमि केवल मिट्टी पत्थरों का जमघट नहीं है, उसे पार्थिव कणों की राशि मात्र समझना भूल है। वह तो मातृभूमि है, जिसमें दक्षिण से उत्तर और उत्तर से दक्षिण तक एक चेतन प्राणधारा विद्युत् शक्ति या कुंडलिनी की तरह सदा सजग रहती है। यह भूमि के स्थूल रूप के भीतर व्याप्त उसकी निगूढ़ ज्योति या चमक है—'अंतश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानती' अर्थात् मातृभूमि के प्राणबिंदु से अपान बिंदु की ओर वेग से एक अंत ज्योति बह रही है। यदि यह प्राण-धारा न हो तो उत्तर की घटनाएँ दक्षिण के लोगों का स्पर्श न कर सकें और दक्षिण की घटनाएँ उत्तर के लिए व्यर्थ रहें। परंतु राजनीति और संस्कृति दोनों क्षेत्रों में उत्तर दक्षिण एक दूसरे के साथ मिले हैं—यही इतिहास का सत्य है। हिमालय में शिव और दक्षिणी छोर पर कन्याकुमारी का सूत्र देश की इस भीतरी एकता का प्रतीक है। किसी देवयुग में देश के मनीषियों ने विचारपूर्वक संस्कृति और कला के इन बाह्यरूपों को निश्चित किया होगा।

वायु-पुराण में कहा गया हैं कि उत्तर में गंगा का उद्गम भारतवर्ष की उत्तरी सीमा है। हिमालय में गंगा की चार ऊपरली धाराएँ हैं जिनके नाम अलकनंदा, भागीरथी, मंदाकिनी और जाह्नवी हैं। लोक में ये चारों पर्याय समझे जाते हैं, किंतु हिमालय के प्रस्रवण क्षेत्र मे ये चारों धाराएँ अगल-अगल हैं। देव प्रयाग में इन सबके मिलकर एक हो जाने के बाद गंगा नाम पड़ता है। इनमें मुख्य नाड़ी अलकनंदा है जो बद्रीनाथ के पास अलकापुरी की बांक से निकलती है। उसी अलकनंदा में देव-प्रयाग के संगम पर भारीरथी मिलती है जो गंगोत्तरी की ओर से आई है, और रुद्र प्रयाग के संगम पर केदारनाथ से आई हुई मंदाकिनी मिली है। गंगा की सबसे ऊपरली धारा जाह्नवी का उद्गम टीहरी रियासत का सबसे ऊपरी छोर है। अक्षांश के हिसाब से जाह्नवी सबसे ऊपरी धारा है जिसका जल गंगा में मिला है। इसलिए जहाँ तक गंगा है वहीं तक उत्तर में भारतवर्ष है, यह परिभाषा पुराने समय में बन गई थी।

भरत शब्द की निरुक्ति—भारत नाम का संबंध भरत से है। इस नाम की गई व्याख्याएँ प्राचीन साहित्य में मिलती हैं। उनके तीन दृष्टिकोण हैं, एक राजनैतिक, दूसरा जन-संबंधी तीसरी सांस्कृतिक, जो इस प्रकार है। भरत राजा के कारण देश का नाम भारत हुआ, भरत जन के कारण इसकी संज्ञा भारत हुई, एवं भरत अग्नि की संस्कृति का क्षेत्र होने से यह भारत कहलाया। भरत राजा के नाम से देश को भारत, प्रजाओं को भारती, हस्तिनापुर के मुख्य राजवंश को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भरतवंश और उसके राजाओं को भारत कहने लगे। यह मत महाभारत के आदि पर्व में व्यक्त किया गया है[5]। भरत अत्यंत प्रतापी चक्रवर्त्ती सम्राट् थे–

स राजा चक्रवर्त्यासीत्सार्वभौमः प्रतापवान्
–(आदि. 69/47)

उन्हें दौःषन्ति भरत भी कहते हैं। भरत ने चारों दिशाओं के अंत तक इस भूमि को जीतकर चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया और अश्वमेघ यज्ञों से यजन किया। ऐतरेय ब्राह्मण जैसे प्रचीन ग्रंथ में इसका स्पष्ट उल्लेख आया है:-

तस्माद्‌ु भरतो दोष्यन्तिः समन्तं सर्वतः प्रथिर्वी जयन् परीयायाश्वैश्च मेध्यैरीजे।
–(ऐतरेय 8/23)

ऐतरेय और शतपथ के अन्य प्रमाणों के अनुसार दौष्यन्ति भरत ने अठहत्तर यज्ञ यमुना के किनारे और पचपन गंगा के तट पर किए थे[6]। शतपथ ब्राह्मण की अनुश्रुति तो यहाँ तक है कि शकुंतला के पुत्र भरत ने समस्त पृथ्वी को अपनी विजित में लाकर एक सहस्र से भी अधिक यज्ञीय अश्व इंद्र के लिए अर्पित किए थे[7]। देश में यत्र-तत्र सर्वत्र आर्य संस्कृति को फैलाने की सर्वमान्य युक्ति यज्ञों का विधान था। यज्ञ राज्य-विस्तार के साथ प्रसारित होते थे। निश्चय ही भरत के चुतरंतशासन में इस भूमि को राजनीतिक एकता प्राप्त हुई, अतएव भरत का नाम भूमि के नाम के साथ संयुक्त हो जाना स्वाभाविक था।

महाभारत में कहा कि भरत के जन्म के अनंतर दुःषन्त ने शकुंतला को उसे सौंपते हुए कहा कि तुम्हारे द्वारा इसका भरण-पोषण करना आवश्यक है अतएव इसका नाम भरत होगा। जब भरत बड़े हुए तो वे युवराजपद पर अभिषिक्त हुए। और तब महाप्रतापी भरत का लोकों को गुंजाने वाला रथचक्र अप्रतिहतगति और प्रभास्वर तेज के साथ चारों दिशाओं में घूम गया[8]। इसके फलस्वरूप चक्रवर्ती भरत का विजित भारत कहलाया। इन गाथाओं में भरत के लिए 'समंत पृथ्वी का स्वामी' और 'सब पृथ्वी का विजेता' पद महत्त्व के हैं। समंत पर्यंत पृथ्वी के अधीश्वर को एकराट् कहा जाता था। समंत का अर्थ है चारों दिशाएँ, पृथ्वी की चार खूंटें; उनकी सीमा तक पृथ्वी को अपने विजित में लाने वाला पृथ्वीपति एकराट् संज्ञा का अधिकारी माना जाता था। प्राचीन भारतीय राजनीति की यह एक परिभाषा थी जिसका उल्लेख राज्याभिषेक पद्धति के मंत्रों में आता है। इन प्रमाणों से इतना निश्चयपूर्वक जाना जाता है कि एक आदर्श राज्य व्यवस्था के अंतर्गत समस्त भारत भूमि के सम्मिलित हो जाने की कल्पना ब्राह्मण-युग की राजनीति में भारतीय भूगोल का सर्वमान्य सत्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बन चुका था। 'चतुरंतामिमां पृथ्वीं पुत्रों में पालयिष्यति' (आदि. 69/27) इस श्लोक में चतुरंत पृथ्वी को एक राजनीति के सूत्र में बाँध लेने की जिस कल्पना का आरंभ भरत के साथ हुआ, उसी की पुनरावृत्ति हम इतिहास में बार-बार पाते हैं। भारतवर्ष के इतिहास की तरह प्रायः प्रत्येक देश में राजनीतिक एकीकरण का यही ढंग पाया जाता है। हम देखते हैं कि कितने ही सामंतों के बीच में एक राजशक्ति उठ खड़ी होती है और अपने प्रताप से अन्य सब पर अपना सिक्का बैठाकर देश को एक राजनीति के सूत्र में पिरो देती है। भारतवर्ष के इतिहास के उषःकाल में ही भरत चक्रवर्ती के रूप में हम इस प्रक्रिया को सत्य होता हुआ पाते हैं। यह पूर्व युग का इतिहास है। आधुनिक युगों के निकट प्रसिद्ध होने वाले इतिहासों में भी राजनीतिक एकता का ठाठ यही रहता है। अभी बहुत दिन नहीं हुए इंग्लैंड, जर्मनी आदि देशों में एक राजसत्ता इसी तरह ऊपर उभरी। नंद, मौर्य, गुप्त आदि साम्राज्य अपने रथचक्र की अप्रतिहत गति से भूमि को एक राजनीति के सूत्र में बांधने के उत्तरोत्तर प्रयोग हैं। किंतु इतिहास की दीर्घकालीन पगडंडियों में भरत के यश को कोई न पा सका—

महदद्य भरतस्तय न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं सत्यं इव बाहुभ्यां नोदापुः पंचमानवाः॥

—(शतपथ)

'भरत के बड़प्पन (महत्) को न पहले के, और न बाद के मनुष्यों में आजतक कोई पा सका है, जैसे धरती पर खड़े हुए व्यक्ति के लिए आकाश का छूना कठिन है'[9]।

भरत से भारत की उत्पत्ति देश की एकता का युगांतव्यापी चिह्न बन गई। महाभारत के भारतीय भूगोल पर इसकी पक्की छाप लग चुकी थी। तभी हम देखते हैं कि भीष्मपर्व में भारतीय भुवन कोष को वर्णन करने से पूर्व 'अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भरतम्' की प्रस्तावना जानबूझ कर रखी गई है।

इसी के अतिरिक्त प्राचीन अनुश्रुति की एक बारीक ध्वनि और भी सुनाई पड़ती है जिसमें सब प्रजाओं का भरण करने और उन्हें जन्म देने के कारण मनु को भरत कहा गया। नाम की उस निरुक्ति के अनुसार यह वर्ष भारत कहलाया[10]। इसका यह अभिप्राय हो सकता है कि मनु आदि-प्रजापति थे। उन्होंने सबसे पहले धर्म और न्याय की मर्यादा बांधी। उनकी बांधी हुई व्यवस्था के अनुसार प्रजाओं के भरण-पोषण का सिलसिला शुरू हुआ। इस भरणात्मक गुण के कारण मनु भरत कहे गए। जिस भू-खंड में मनु की संतति ने निवास किया और जहाँ मनु की चलाई हुई रीति-नीति प्रचलित हुई, उस देश के नाम भारतवर्ष पड़ा। इस व्याख्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की यह विशेषता है कि इसमें देश के नाम को और भी व्यापक आधार पर समझने का प्रयत्न किय गया है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त ने भी इस बात को माना है कि यह मातृभूमि मनु की संतति (मानवों) के बेरोकटोक (असंबाध) बसने का स्थान है।

भारत नाम की ऊपर लिखी व्युत्पत्तियों का आधार राजनैतिक है। इसके अतिरिक्त नाम की एक दूसरी व्युत्पत्ति भी संभव है जिसका मूल और भी पुराना है। ऋग्वेद काल में भरत आर्यों की एक प्रतापी शाखा या जन की संज्ञा थी। विपाट और शुतुद्रि नदियों को पार करके भरत जन जिस प्रदेश में आबसा वह भरत जनपद कहलाया[11]। मोटे तौर पर यह कुरु जनपद का इलाका था। ब्राह्मण काल में ही भरत जन का अंतर्भाव कुरु-पंचाल के क्षत्रियों में होने लगा था, यद्यपि पाणिनि के समय में भी भरत जनपद नाम की स्मृति बच गई थी। इस जनपद का राजनीतिक प्रभुत्व वैदिक काल में सबसे ऊपर तैर आया था। भरत जनपद की प्रजा भारती कहलाने लगी। भरत जन के आधार पर देश का विशेष भू-भाग आरंभ में भारत कहलाया और उसी के बढ़ते हुए महत्त्व के साथ यह नाम गंगा-यमुना की अंतर्वेदि की ओर बढ़ता हुआ क्रमशः सर्वत्र फैल गया। भरत जन के देश का नाम भारत पड़ा, यह कल्पना बड़ी रमणीय है। वस्तुतः भारतीय जन के ऐकांतिक समन्वय से ही जनता और भूमि की एकता सिद्ध हुई है। जन जब बढ़ता है, उसमें पृथक्त्व की रेखाएँ विलीन हो जाती हैं। जन के विकास की प्रवृत्ति यही रहती है कि क्रमशः भेद हटते जाते हैं और शनैः शनैः सब लोग एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत ढल जाते हैं। जन की एकता जब अपनी पूर्ण अवस्था को पहुँच जाती है, तब राष्ट्रीयता का पूरा विकास समझना चाहिए।

भारत नाम की तीसरी व्युत्पत्ति का दृष्टिकोण सांस्कृतिक है। ऋग्वेद में ही अग्नि को भारत कहा गया है—तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसत्, (ऋ. 4/25/4)। ब्राह्मणों में यह परिभाषा पुनः कई बार दुहराई गई है—अग्निर्वे भरतः स वै देवेभ्यो हव्यं भरति (कोषीतकी 3/2)[12]।

अर्थात् अग्नि देवों के पास हवि पहुँचता है, इसलिए उसे भरत कहते हैं।

महाभारत में अग्नि के भरत नाम की और उसके क्रमशः प्रसार की व्याख्या यों की गई है—

भरत्येष प्रजाः सर्वास्ततो भरत उच्यते।

—(कनवर्व, पूना, 211/1)

'अग्नि भरत है क्योंकि वह प्रजाओं को भरता है।' देश में जहाँ-जहाँ अग्नि फैलता है, प्रजाएँ उसकी अनुगामी होकर उस प्रदेश में भर जाती हैं, या फैल जाती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। हमारे आदि युग के भूसन्निवेश की यही परिपाटी थी। प्रत्येक जाति भूमि के साथ अपना संबंध स्थापति करती है। पृथ्वी पर जन के बस जाने को भू-सन्निवेश कहते हैं। भारती प्रजा या भारतीय जन इस भूमि पर यज्ञीय अग्नि के प्रतीक से नदी तटों पर वेदियाँ रचता हुआ फैला—

एवं तवजनयद् घिष्ण्यान् वेदोक्तान् विविघान् बहून्।
विचरन् विविधान् देशान् भ्रमयाणस्तु तत्र वै॥

—(वनपई, पूना, 2/12/20)

इस प्रकार अपने लिए विविध देशों में वेदोक्त विधि से वेदियाँ (घिष्ण्य) कल्पित करता हुआ भरत अग्नि लोक में फैल गया। देश के अनेक भू-भाग उसके चंक्रमण के अंतर्गत आ गए। जहाँ यज्ञ की वेदिका बनी, वहीं आर्यजन का जय स्तम्भ स्थापित हो गया। यज्ञ के यूप जन के विस्तार के प्रतीक बन गए। पृथ्वी सूक्त में भी इस तथ्य का उल्लेख किया गया है।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्तें स्वरवः पृथिवव्यासूर्ध्वाः शुक्रा आहुतयः पुरस्तात्॥
सा नो भूमिर्वर्धपद्दर्घमाना।

—(पृथ्वी सूक्त मं. 12)

विश्वकर्मा लोग जिस भूमि पर यज्ञ का वितान फैलाते हैं, जहाँ वे वेदि (नए-नए अनुष्ठानों की केंद्रीय भूमिका) रचते हैं, जिस पृथ्वी पर यज्ञ के पुण्य-स्तंभ ऊर्ध्व स्थापित हैं जो अग्निहोत्र के द्वारा चमकते रहते हैं—ऐसी मातृभूमि उन यज्ञों से बढ़ती हुई हमारा भी संवर्धन करती है। आद्य भूसन्निवेश के समय देश-विस्तार की यही राष्ट्रीय युक्ति थी। यज्ञीय अग्नि राष्ट्रीय संस्कृति की जननी और प्रतीक थी। जन का यह विस्तार नदियों के काँठे में हुआ, नदी-तटों के मार्ग वेदि और यूपों से सज्जित हुए, अतएव नदियाँ सच्चे अर्थों में यज्ञवेदियों की माताएँ हुईः—

एता नद्यस्तु धिष्ण्यानां मातरो याः प्रकीर्तिताः।

—(वनपर्व 212/24)

मातृभूमि का घुटना काला था। राष्ट्रीय जन जब उसकी गोद में बैठा तो वहाँ-वहाँ अग्नि प्रज्ज्वलित होने से मातृभूमि की गोद में चमक आती गई। इस प्रकार समग्र भूमि भरत-अग्नि का व्यापक क्षेत्र बन गई और यही भरतक्षेत्र भारत कहलाया। सिंधु, सरस्वती, यमुना, गंगा, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी—इन सात महानदियों के उत्संग में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भरत-अग्नि की संस्कृति का विस्तार हुआ। प्रत्येक नदी प्रदेश एक पात्र था। उसमें राष्ट्रीय जन फैलने लगा और अपनी संस्कृति की धारा भरने लगा। जब वह पात्र भर गया तब भरत अग्नि आगे बढ़ी और उसने नए अग्न्यागार बनाए। सचमुच अपने देश की संस्कृति नदी मातृक है। नदियों ने ही भौतिक रूप में अपनी मिट्टी से भूमि का तानावाना करोड़ों वर्षों में तैयार किया। जब वह बन गया तब उसके साथ जन का संपर्क होने लगा। जन-विस्तार के लिए नदियों के नाड़ी-जाल का सूत्र भूमि पर फटका हुआ था, जैसे कोई सूत्रधार गृहनिर्माण या नगरमापन के लिए अपना सूत्र छोड़ता है। उसी क्रम से विस्तीर्ण होकर, बिना एक दूसरे को दबाए हुए समस्त जन भूमि पर छा गया। उसके उस प्रकार भर जाने (संभरण) का प्रतीक अग्नि थी, वह भरत कहलाई। संस्कृति की ज्योति का ही नाम अग्नि है। उसने प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपनी वेदि तैयार की, मनुष्यों के मन की अग्नि इस अग्नि से मिल गई, तब भरत-अग्नि का कार्य पूरा हुआ। आज तक जन-जन के मानस में वही चिनगारी है। विचार और कर्म के रूप मे वह झट प्रकट हो जाती है। उस अग्नि से भूमि का हर एक भाग भरा हुआ है। यही जन का मातृभूमि के साथ अखंड संबंध है। जहाँ तक भूमि का विस्तार है वहीं तक राष्ट्र के जन का भी विस्तार है; उसमें कहीं व्यवधान, खाली जगह या विरुद्ध स्थान नहीं रहा जाता। इसी अखंड भाव की यह वैदिक परिभाषा थी—

यावती भूमिः तावती वेदिः।

जितनी भूमि है, उतनी ही हमारे यज्ञ की वेदि है जिसमें भरत-अग्नि जल रही है। यज्ञों के कर्मकांड तो स्थूल चिह्न हैं। वास्तविक वेदि तो मनुष्यों के मन हैं जिनमें संस्कृति की शुभ्र अग्नि भासित होती है। उसमें विचारों के शतकोटि अग्निहोत्र राष्ट्र में सदा और सर्वत्र होते रहते हैं। यही प्रक्रिया इतिहास का कभी न रुकने वाला प्रवाह है। राष्ट्र की भरत-अग्नि अमर है। विविध जन, विविध भाषा और विविध धर्मों को साथ तपाकर एक रूप बनाना उसी की शक्ति है। कई सहस्र वर्षों से उसकी यह अत्यंत सूक्ष्म रहस्मयी, राष्ट्र जनने वाली पद्धति चालू रही है। इस प्रकार राज्य, जन और संस्कृति की तीन धाराओं के संगम पर देश का नामरकण भारत प्रसिद्ध हुआ।

बौद्ध-ग्रंथों में कहीं-कहीं भारतवर्ष के लिए जम्बूद्वीप नाम भी मिलता है। पुराणों का जंबद्वीप भूगोल की बड़ी इकाई है जिसका केवल एक भाग भरतखंड है। दैनिक संकल्प में 'जंबद्वीपे भरतखंडे' पाठ इसी का सूचक है। इसी भौगोलिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सच्चाई को देश भर में स्वीकार किया गया। पुराणों में भारतवर्ष के लिए कुमारीद्वीप नाम भी मिलता है।

सिंधु–हिंदू

देश के नामकरण की दूसरी धारा ऋग्वेदीय 'सिंधु' शब्द है। ऋग्वेद में सिंधु उस महान् नद की संज्ञा है जो उत्तर-पश्चिम भारत के भूगोल की सबसे बड़ी विशेषता है। सिंधु के इस पार का पंचनद या वाहीक प्रदेश तो भारतवर्ष की सीमा के अंतर्गत था ही, सिंधु के पार का वह काँठा भी जहाँ का पानी ढलकर सिंधु में आता है और जिसमें कुभा (काबुल), सुवास्तु (स्वात), गौरी(पंजकोरा), गोमती (गोमल), क्रुमु (कुर्रम) आदि नदियाँ हैं, सदैव भारतीय भूगोल का अंग माना जाता था। गंधार (तक्षशिला से काबुल तक का प्रदेश), कपिश (हिंदुकुश का प्रदेश, मध्य अफगानिस्तान), कंबोज (पामीर व बदख्शां) आदि अनेक भौगोलिक नाम भरत की देन हैं और उन देशों की प्राचीन संस्कृति भी भारतीय ही थी। भारतवर्ष का जो सबसे प्राचीन साहित्य है उसकी पृष्ठभूमि में कंबोज, वाल्हीक, कपिश, गंधार, ये निश्चित बिंदु हैं जिनसे भारतीय हलचलों के तार मिले हुए पाए जाते हैं।

महाजनपदों के युग में (1000 ई.पू. से 500 ई. पू.) जब भूवनकोष की सूचियाँ संकलित की गईं ये सारे प्रदेश भारतीय भूगोल के अंतर्गत आते थे। विक्रम की लगभग दसवीं शताब्दी तक सिंधु के उस पार के देशों से भारत का अटूट संबंध बना रहा। उस समय सिंधु महानद उत्तर पश्चिम में भारत के भूगोल की सबसे बड़ी विशेषता थी जिसके कारण बारह के लोगों ने इस देश का नामकरण किया। भारत नाम की परंपरा स्वदेशी है, जबकि सिंधु पर आश्रित नाम विदेशियों के रखे हुए हैं।

मुसलमानी धर्म के जन्म से भी बारह सौ वर्ष पहले ईरानी सम्राट द्वारा (प्राचीन रूप दारयवहु, सं. धारयद्वसु) के लेखों में भारतीय प्रदेशों के लिए हिंदु शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन शषा (आधुनिक सूसा) के राजमहल के लेख में लिखा है–

> **पिरुषूहस्त्या इदा कर्त हचा कुषू आ उता हचा हिंदउवू उता हचा हरउवत्या अयरियू।** **(पंक्ति 43-44)।**

'(इस राजप्रासाद के लिए) हाथीदांत, जिस पर यहाँ काम किया गया, कुप देश (अबीसीनिया) से, और हिंदु से, और हरव्हैती (सं. सरस्वती, आधुनिक अरगंदाब, अफगानिस्तान) से लाया गया। इसमें हिंदउव् शब्द हिंदु की पंचमी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विभक्ति का एक वचन सिंधोः के बराबर है। उस समय ईरानी भाषा में हमारे देश का यही नाम प्रचलित था, क्योंकि उनका परिचय पश्चिमी भारत के सिंधु के आस-पास के जनपदों तक ही सीमित था। दारा के अन्य लेखों में 'हिंदुष्', अर्थात हिंदु (सं. सिंधुः) और हिंदुवअ अर्थात् हिंदु देश का निवासी (सं. सिंधुव्य) ये शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। पाणिनि के भूगोल के अनुसार सिंधु एक जनपद विशेष का नाम भी था, जो आधुनिक सिंध-सागर दोआब है। यह जान लेना चाहिए कि जिसे अब सिंधु कहते हैं उस प्रांत का पुराना नाम सौबीवर था। प्राचीन सिंधु जनपद का नाम सिंधु नदी के किनारे दूर तक फैले हुए होने के कारण पड़ा था। इसलिए यद्यपि एक जनपद विशेष के लिए भी सिंधु शब्द रूढ़ था, फिर भी उसका रूपांतर हिंदु कालक्रम से विदेशी परंपरा के अनुसार सारे देश के लिए प्रयुक्त होने लगा। दारा के लेखों में उसका यही अर्थ जान पड़ता है। हिंदु से ही देशवाची हिंद शब्द बना, और फिर जातीयता के आधार पर अफगानिस्तान, बलूचिस्तान की भाँति हिंदुस्तान नाम भी मध्यकाल में चल पड़ा।

पलवी भाषा में सासानी राजाओं का एक लेख पैकुली नामक स्थान से मिला है। उसमें भी भारतवर्ष के लिये हिन्दु नाम का व्यवहार हुआ है। यह नाम भारतवर्ष के साहित्यिकों को भी ज्ञात था। निशीथचूर्णि नामक जैन ग्रंथ (रचना संवत् लगभग 733) में कालकाचार्य कथा नामक संदर्भ में कहा है कि आचार्य कालक पारस देश में गया और उसने पारसकुल के साहि राजाओं को 'हिंदुग' देश चलने के लिए कहा (एहिहिंदुगदेसं वच्चावो)[13]। साहि राजा ने छियानवे साहियों के साथ हिंदुग देश की यात्रा की और वे सौराष्ट्र में बस गए। ज्ञात होता है कि सप्तम सदी में भारतीय साहित्यकार भी हिंदुग नाम से परिचित हो गए थे। सौराष्ट्र के शक राजाओं के इतिवृत्त से परिचित लोगों में ही यह नाम चालू रहा होगा।

प्राचीन यूनानी भूगोल-लेखकों ने पाँचवीं-चौथी सदी ईस्वी पूर्व में इस देश का नाम सिंधु-हिंदु समीकरण के चालू प्रयोग के आधार पर इंडोस (Indos) लिखा है। अंत का सकार प्रथमा के एक वचन का चिह्न है, जैसा सं. सिंधुस् और हिंदुष् में भी पाया जाता है। इंडिया, इंडिका आदि नाम इसी से प्रचलित हुए।

चीनी लोगों ने भी सिंधु नाम की परंपरा का व्यवहार किया। चीनी सेनापति पन्-योङ् ने वि. 182 (125 ई.) में चीनी सम्राट् को पश्चिमी देशों का वर्णन भेजते हुए लिखा कि थि-एन्-चु देश, (देवों का देश) शिन्-तु-नाम से भी प्रसिद्ध है। शिन्-तु सिंधु का ही चीनी रूप है। इसी को चीनी साहित्य में 'इन्-तु-को' भी कहा है जिसमें इनूतु-शिनूतु (सिंधु) का रूपांतर है और 'को' का अर्थ देश है[14]।

इन नामों के विषय में यह बात ध्यान देने की है कि स्वयं भारतवासियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने अपने देश के नामकरण में भारत शब्द से प्रचलित परंपरा को अपनाया, किंतु विदेशी लेखकों ने सिंधु शब्दवाले नामों को ग्रहण किया।

संदर्भ

1. विष्णु पुराण ने इस श्लोक को इस प्रकार दिया है—
   उतरं यत्ससुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
   वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥—(विष्णु. 2/3/1)
2. आयतस्तु कुमारीतो गंगायाः प्रवहावधिः।—(मत्स्य. 114/10)
   गंगा के स्रोतों की सब से उपरली सीना जंस्कर शृंखला में जाह्नवी का उद्गम है।
3. पीरस्त्यानेघ माक्रामंस्तांस्ताञ्जन पदाञ्जयी।
   प्राप तालीवन श्याममुपकंठं महोदवेः॥—(रघु. 4/34)
4. रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरि रित्युवाद।—(रघु. 12/1)
5. भरताद् भारतो कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम्
   अपरे ये च पूर्वे च मारत इति विश्रुताः॥—आदिपर्व (पूना) 69/49
6. अष्टा सप्तति भरतो दीषन्तिर्यमुनामनु।
   गंगायां वृत्रघ्नेऽबध्नात्पंचपंचाशतं हयान्॥—(ऐ. 8/23; शतपय 13/5/4/11)
7. शकुन्ताल नाडपित्यप्सरा भरतं दधे।
   परः सहस्रनिन्द्राश्वान्मेध्यान् य आहरद्विजित्य पृथ्वीं सर्वामिति।—(13/5/4/13)।
8. भर्वव्योऽयं त्वया यस्मादस्मांक वचनादपि।
   तस्माद् भवत्वयं नाम्ना भरतो नाम ते सुतः॥68/33॥,
   भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽमिषेचयत्॥69/44॥
   तस्य तत्प्रथितं चक्रं प्रावर्तत महात्मनः।
   भास्वरं दिव्यभजितं लोकसंनादां महत्॥69/45॥—(आदि पर्व)
9. भरत की श्रेष्ठता को भागवत में यों कहा गया है—
   येघां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत्;
   येनेदं वर्ष भारतमिति व्यपदिशन्ति॥—(भागवत 5/4/9)
10. भरणात्प्रजानां चैव मनुर्भत उच्चते।
    निरुक्त वचनैश्चैव वर्ष तद् भारतं स्मृतम्॥—(मत्स्य 114/5)
    वायुपुराण 45/76 में 'भरणाच्च प्रजानां वै' पाठ है।
11. यदंग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः।—(ऋ. 3/33/11)
12. षप (अग्निः) हि देवेभ्यो हव्यं भरति।
    तस्माद् भरतोऽग्निरित्याहुः।—(श. 1/4/2/2)
13. श्री नीलकंठ शास्त्री, फारेन नोटिसेज् ऑफ सदर्न इंडिया, पृ.10
14 'इन्-तु-को' नाम की सूचना मुझे श्री शांतिभिक्षु जी, चीनभवन, शांति-निकेतन, से प्राप्त हुई जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-3

भूमि-परिचय

देश की मौलिक एकता का एक सबल आधार यह है कि वहाँ के रहनेवालों को उस भूमि का पूरे रूप में परिचय हो और वे उसे समानरूप से प्यार करते हों। आरंभ में पृथक्-पृथक् प्रदेशों में बसे हुए मनुष्यों को केवल अपनी सीमाओं के भीतर पृथ्वी का परिचय होता है और उसी को वे अपनी मातृभूमि मानकर श्रद्धा अर्पित करते हैं। किंतु इतिहास मनुष्यों के इस दृष्टिकोण को विस्तृत बनाता है। भारतवर्ष में भी सहस्रों वर्षों की ऐतिहासिक हलचलों के भीतर से मनुष्य उस स्थिति को प्राप्त हुए जिसमें संपूर्ण भूमि की भौगोलिक एकता के साथ उनका परिचय हुआ और उसके फलस्वरूप उनके मनोभाव प्रांतीय सीमाओं से उठकर समस्त मातृभूमि के साथ मिल सके। भूमि-परिचय की यह प्रक्रिया वस्तुतः भूमि पर बसनेवाले जन के भूतकालीनल इतिहास का ही व्यापक रूप है। जन की भाषा, जन की संस्कृति, जन के धार्मिक विश्वास और अन्य बहुमुखी जीवन के विकास का पर्यवसान जन के द्वारा भूमि के अंतरंग परिचय में होता है। उसी का अमृतमय फल भूमि और जन में परस्पर माता-पुत्र के दिव्य संबंध की स्थापना है।

इसमें संदेह नहीं कि शुरू में आर्य जाति का परिचय समस्त देश के साथ एकदम न हो गया था। लेकिन शुरू से ही मातृभूमि के साथ उनकी प्रेम की भावना बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। भूमि को माता और अपने आपको उसका पुत्र समझने की सामूहिक चेतना बहुत ठोस और सच्ची थी। समय पाकर अनेक प्रकार से वह भावना निरंतर बढ़ती गई। मातृभूमि के साथ प्रेम के इस ऊँचे धरातल की पहली झांकी ऋग्वेद के नदी सूक्त में पाई जाती है:—

इमं में गंगे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असिबन्या मरुद्धधे वितस्तयार्जीकीये
शृणुह्य सुषोमया[1]॥ 20/75/5॥

"हे गंगा, यमुना, सरस्वती, हे शुतुद्रि, पिरुष्णी के सहित तुम मेरे स्तोत्र को सुना। हे मरुद्वृधा और आर्जीकीया असिक्नी वितरस्ता और सुषोमा के साथ मेरी स्तुति सुना।" गंगा से लेकर सिंधु तक का समस्त प्रदेश ऋग्वेद कालीन भारतवर्ष के अंतर्गत था। इसी में गंगा और सिंधु का समस्त प्रस्रवण क्षेत्र सम्मिलित था। पूर्वी काश्मीर के कष्टवार प्रदेश की मरुद्धधा नदी उत्तर की ओर देश के विस्तार को आज की तरह उस समय भी सूचित करती थी। वस्तुतः ऋग्वेद कालीन भारतवर्ष की सीमाएँ उत्तर-पश्चिम में सिंधु के उस पार कुभा (काबुल) और सुवास्तु (स्वात) नदियों तक बढ़ी हुई थीं।

उत्तर वैदिक काल में भूमि के साथ आर्य जाति का परिचय और अधिक विस्तार को प्राप्त हुआ। शतपथ ब्राह्मण में एक प्राचीन अनुश्रुति है कि पूर्वकाल में सदानीरा नदी तक ब्राह्मणों का क्षेत्र था। उसके उस पार का देश ब्राह्मणों के लिए अक्षेत्र था क्योंकि वहाँ वैश्वानर अग्नि की स्थापना नहीं हुई थी। एक विदेध माथव नाम के ऋषि थे। उन्होंने सरस्वती के किनारे प्रज्वलित अग्नि को देखा। अग्नि का वही पुँज पूर्व की ओर बढ़ता हुआ चला और सब नदियों को अपने तेज से प्रज्वलित करता हुआ सदानीरा तक बढ़ गया जो उत्तरी पर्वत से निकलकर बहती है। इस प्रकार वह क्षेत्र भी ब्राह्मणों के लिए खुल गये और यज्ञों के द्वारा आत्मानुकूल (स्वदितस्वादिष्ट) बनाया गया। इस प्रकार विदेध माथव के द्वारा उपनिवेश क्षेत्र में सम्मिलित वह प्रदेश 'प्राचीन भुवन' अर्थात् प्राच्य-देश कहलाया। वह सदानीरा नदी कोसल और विदेह जनपदों के बीच में बहती थी। (श. 1/4/1)

इस प्रकार देश-विस्तार की उत्तरोत्तर सीढ़ियाँ और भी हुई होंगी। मनुस्मृति में उनकी एक झलक मिलती है। पहले सरस्वती और दृपद्वती के बीच की भूमि ब्रह्मावर्त[2] कहलाती थी। वह स्थान इतना पवित्र था कि उसे लोग देवनिर्मित देश समझते थे। उस देश का आचार सब के लिए सदाचार का आदर्श था[3]।

ब्रह्मावर्त की पुण्यभूमि का विस्तार ब्रह्मर्षि देश के रूप में हुआ जिसमें कुरुक्षेत्र, मत्स्य[4],शूरसेन[5] और पंचाल[6] के जनपद सम्मिलित हुए। गंगा-यमुना के ऊपरी कांठे का यह देश मनु की दृष्टि से अत्यंत पवित्र था। इसी के लिए यह कहा गया है कि यहाँ के शिष्ट अग्रजन्मा पुरुषों का सदाचार पृथ्वी के समस्त मानवों के लिए शिक्षा का मानदंड था[7]। इस आचार के कारण ही स्थूल भौगोलिक पृथ्वी को पुण्यभूमि की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। ब्रह्मवादी ऋषियों और धर्म परायण जीवन में प्रवृत्त स्त्री-पुरुषों के सामूहिक प्रयत्नों से ब्रह्मर्षि-देश में भारतवर्ष के त्याग और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तपः प्रधान आदर्शों का उच्च हिमालय प्रतिष्ठित हुआ। उसके शिखरों से निकलने वाली प्रेरणाएँ चारों दिशाओं में फैलीं। एक प्रकार से यह प्रदेश मातृभूमि का हृदय बन गया। आद्ययुग में भूसन्निवेश के लिए इस प्रकार के आदर्श हृदयस्थानीय प्रदेश की कल्पना के केंद्र से बाहर जाकर फैलने वाले जन को बहुत बल प्राप्त होता है।

क्रमिक देश-विस्तार की सीढ़ी मनु का मध्य देश है। उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विंध्य, पश्चिम में विनशन (सरस्वती नदी के मरुभूमि में अदृश्य हो जाने का प्रदेश उत्तरी राजस्थान) और पूर्व में प्रयाग ये मध्य देश की सीमाएँ थीं। पीछे चलकर संभवतः जब विदेध माथव ने सदानीरा[8] नदी के उस पार आर्यक्षेत्र का विस्तार किया तो इस मध्य देश का विस्तार भी मगध तक हो गया। बाद के बौद्ध साहित्य में मध्य देश का विस्तार बराबर बिहार तक समझा जाता था।

इस प्रकार पूर्व और पश्चिम की ओर जब आर्यों के उपनिवेश चढ़ते गए तो वे एक ओर तो पूर्ववाहिनी गंगा के किनारे-किनारे पूर्व समुद्र तक फैल गए और दूसरी ओर पश्चिम में प्राचीन सौवीर (आधुनिक सिंध) एवं आनर्त (गुजरात-काठियावाड़) तक के भूमिखंड से उनका परिचय हो गया। यह स्थिति पाणिनिकाल (5वीं सदी ई. पूर्व) से पहले ही हो चुकी थी। पाणिनि काल में सीवीर से सूर मस (असम की सूरमा नदी की घाटी) तक का प्रदेश आर्यक्षेत्र के अंतर्गत आ गया था। देश के इस क्रमिक विस्तार से पुण्यभूमि का जो स्वरूप स्थिर हुआ उसकी संज्ञा 'आर्यावर्त' थी। मनु के अनुसार आर्यावर्त[9] की परिभाषा में हिमालय और विंध्य पर्वत एवं पूर्व तथा पश्चिमी समुद्रों की भूमि सम्मिलित है। इस समय तक पूर्वी समुद्र के किनारे पर गंगासागर संगम एवं कलिंग में आर्य उपनिवेश स्थापित हो गए थे। देश-विस्तार की इस शृंखला में नए नगर और तीर्थों का निर्माण होता गया जिनके नाम प्रायः संस्कृत शब्दों से रखे गए। उन्हीं नगरों के चारों ओर देहातों के अधिकांश नाम प्राचीन निषाद भाषा से संबंधित मिलेंगे जिनके मध्य में होकर आर्य संस्कृति की सन्निवेश धारा आगे बढ़ गई थी। जन प्रसार के केंद्र अधिकतर तीर्थरूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। उस-उस क्षेत्र में संस्कृति के अनेकों रूपों के भी केंद्र बने और आर्थिक और राजनैतिक जीवन के सूत्र भी उन्हीं केंद्रों से संचालित होने लगे।

इस प्रकार क्रमशः भूमि के साथ जन के संबंध का विस्तार इतिहास के दीर्घकालीन युगों में पूरा हुआ और अंत में देश की भौगोलिक इकाई की इस परिभाषा का जन्म हुआ–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आ हिमवत आ कुमार्या भारतवर्षम्

–(पैठीनस)

अर्थात् हिमालय से कन्याकुमारी तक की भौगोलिक इकाई की संज्ञा भारतवर्ष[10] है।

जिस समय सारा देश इस प्रकार की एकसूत्रता में बंध चुका था उस समय की भौगोलिक स्थिति का परिचय देने वाले भुवनकोश नामक विशेष संग्रहात्मक अध्याय प्राचीन पुराण साहित्य में मिलते हैं, जैसे मत्स्य-पुराण (अ. 114), वायुपुराण (अ. 45), मार्कंडेय पुराण (अ. 57), ब्रह्मांड-पुराण (अ. 49), कूर्मपुराण (अ. 47), विष्णुपुराण (ख. 2, अ. 3), वराहपुराण (अ. 85), वामन-पुराण (अ. 13) और गरुड़ पुराण। इनमें मत्स्य-पुराण की सूची सब से प्रचीन है। भारतीय भुवन-कोश का एक विस्तृत संस्करण महाभारत में भी पाया जाता है। भीष्मपर्व में जब कौरव-पांडवों की सेनाएँ युद्ध के लिए आमने-सामने खड़ी हो गईं तब धृतराष्ट्र के पूछने पर संजय ने भारतवर्ष के भूगोल का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें मुख्यतः पर्वत, नदी और जनपदों के नामों की सूचियाँ हैं। इन तीनों के अध्ययन से यही परिणाम निकलता है कि भौगेलिक दृष्टि से हिमालय से समुद्रपर्यंत तक का भू-भाग भारतवर्ष के अंतर्गत था और पश्चिम एवं उत्तर में इसकी सीमाएँ अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक थीं।

प्राचीन भौगोलिक परिभाषा के अनुसार पर्वत दो प्रकार के कहे गए हैं–एक वर्षपर्वत और दूसरे कुलपर्वत। वर्षपर्वत एक वर्ष या बड़े भू-खंड को दूसरे वर्ष से अलग करते हैं। इसकी संख्या ज्ञात है–हिमवान्, हेमकूट (कैलास), निपध, मेरु (पामीर), चैत्र, कर्णी और शृंगवान्[11]। इनमें से सब नामों की पहचान अभी संभव नहीं हुई, किंतु हेमकूट की पहचान कैलास के साथ और मेरु की पामीर के साथ प्रायः निश्चित है। हिमवान और मेरु भारत की उत्तरी सीमा बनाते हुए उसे एशिया के दूसरे प्रदेशों से पृथक करते हैं। इससे यह महत्त्वपूर्ण सच्चाई प्रकट होती है कि प्राचीन भारतीवासी कैलास और पामीर प्रदेश को अपने देश की भौगोलिक सीमाओं के अंतर्गत मानते थे। अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा वंक्षु नदी लगभग 2000 वर्षों तक (चंद्रगुप्त के समय से औरंगजेब के समय तक) भारतवर्ष की राजनैतिक सीमा बनाती रही थी। उसके आस-पास के प्रदेश कंबोज जनपद और वंक्षु नदी की गणना भुवनकोश की सूची में है।

कुलपर्वत वे हैं जो देश के भीतर ही उसकी प्रादेशिक सीमाएँ सूचित करते हैं। ये भी सात हैं[12]। इनमें से कलिंग या उड़ीसा से शुरू होने वाली पूर्वी घाट की पर्वत शृंखला का पुराना नाम महेंद्र था। आज भी गंजम के समीप वह 'महेंद्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मलै' कहलाता है। मलय दक्षिण भारत के पर्वतों की संज्ञा थी जिसमें 'नल्लमलै', 'अन्नमलै' और 'एनामलै' आदि कावेरी के दक्षिण की चोटियाँ सम्मिलित थीं। सह्याद्रि उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ पश्चिमी घाट का प्रसिद्ध पर्वत है जो आज भी सारे महाराष्ट्र और कन्नड में इसी नाम से प्रसिद्ध है। शुक्तमान्, ऋक्ष और पारियात्र इन तीन नामों की निश्चित पहचान करना भारतीय भूगोल के लिए अत्यंत आवश्यक है। शुक्तिमान् ऋक्ष और पारियात्र इन तीन नामों की निश्चित पहचान करना भारतीय भूगोल के लिये अत्यन्त आवश्यक है। शक्तिमान सह्याद्रि के उत्तरी छोर से कुछ पहले पूर्व की ओर बढ़ी हुई उसकी वाहियाँ ज्ञात होती हैं, जिसमें खानदेश की पहाड़ियाँ अजंता एवं काफी भीतर घुसा हुआ हैदराबाद गोलकुंडा पठार भी सम्मिलित है। वर्तमान खानदेश का पुराना नाम ऋषिक था। शुक्तिमान् पर्वत से निकलने वाली नदियों में ऋषिका नदी मुख्य है। ऋषिका ऋषिक जनपद में बहने वाली ही कोई नदी होनी चाहिए। ऋक्ष पर्वत सह्याद्रि के ठीक उत्तरी छोर ताप्ती के दाएँ किनारे पर वर्तमान सतपुड़ा से लगाकर महादेव पहाड़ियों के पूर्वी सिलसिले तक की कुल पर्वत शृंखला का नाम था। मध्य प्रांत की इस गाँठ से निकलने वाली नदियों में ताप्ती, वेण्या (वेनगंगा) इस पहचान को पुष्ट करती हैं। उड़ीसा की ब्राह्मणी और वैतरणी नदी का उद्‌गम भी ऋक्ष पर्वत से था। इससे ज्ञात होता है कि छोटा नागपुर की पहाड़ियों का रांची तक बढ़ा हुआ सिलसिला ऋक्ष पर्वत के ही अंतर्गत था। ऋक्ष के पूर्वी छोर से उत्तर की ओर घूमकर नर्मदा के उत्तर की पर्वत शृंखला विंध्याचल है जिससे शोण, नर्मदा, महानदी, मध्यभारत की टौंस (समसा) और धसान (दशार्ण) आदि नदियाँ जो सोन और सिंध के बीच में बिखरी हुई हैं निकलती हैं। भारतवर्ष के भीतर के कुल पर्वतों में जो दक्षिणी पठार की सीमाओं पर और उसके भीतर फैले हुए हैं प्रायः सबकी पहचान इन छः नामों में आ जाती है। अब केवल एक नाम 'पारियात्र' और एक ही पहाड़ी बच जाती है और वह है अड़ावला पहाड़ी। श्री पार्जीटर ने प्रमाणित किया है कि वह भूपाल से पश्चिम विंध्याचल के पश्चिमी भाग से लेकर राजपूताने के अड़ावला पहाड़ तक का सिलसिला पारियात्र था जैसा कि उससे निकलने वाली नदियों के नामों से निश्चित रूप में ज्ञात होता है। इनमें पर्णाशा (बनास नदी), चर्मण्वती (चंबल), माही, पार्वती और वेत्रवती (वेतवा) मुख्य हैं जो अभी तक पुराने नामों से प्रसिद्ध हैं और इस कारण पारियात्र और अड़ावला की पहचान का निश्चित संकेत देती हैं।

इस सात कुल पर्वतों और उनसे निकलने वाली नदियों का सूक्ष्म परिचय बताता है कि आर्यावर्त के अरितिक्त देश का जो दक्षिणी भू-खंड था उससे भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूमि पर बसने वाला जन भली भाँति अपना संबंध स्थापित कर चुका था। भूमि और जन के पारस्परिक संबंध की एक अच्छी कसौटी भूमि के पर्वत और नदियों का नामकरण है।

भारतभूमि के पूरे परिचय की एक मजबूत कड़ी महाभारत की नदी सूची है जिसमें लगभग एक सौ साठ नाम हैं, इनमें से कुछ नाम जिनकी पहचान संभव है इस प्रकार हैं–

गंगा, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, महानदी, कावेरी, शतद्रु (सतलज), चंद्रभागा (चनाव), यमुना, दृषद्वती (सरस्वती और यमुना के बीच में कुरुक्षेत्र की चितांग नदी), वितस्ता (जेहलम), देविका (जम्मू से आनेवाली रावी की शाखा देग नदी), वेत्रवती (वेतवा), कृष्णावेणा (गोदावरी की शाखा वेगनंगा), वेदस्मृता (अपरनाम वेदश्रुति; बिसुई नदी जो कोसल जनपद में गोमती से 15 मील पर एक छोटी नदी है और जिसे श्रीराम ने अपनी वनवास यात्रा में तमसा और गोमती की बीच में पार किया था), करीषिणी (वाघपत की करीसन नदी), गोमती, इक्षुला (इक्षुमती या ईखन नदी, फर्रुखाबाद जिला) सरयू, रथस्था (रथवाहिनी रामगंगा का प्राचीन नाम जिसे पहाड़ में अब भी 'रुहुत' कहते हैं), कौशिकी (कोसी), शतकुंभा (गंगा और सरयू के बीच की छोटी नदी, वन. 212-21-224), चर्मण्वती (चंबल), भीमरथी (भीमा), ओघवती (सरस्वती की शाखा मार्कंडा), सदानीरा (राप्ती), गौरी (पश्चिमोत्तर प्रांत की पंजकोरा नदी जो स्वात में मिलती है), सुवस्त्रा (स्वात), वरा (पेशावर की वारा नदी), पंचमी (पंजशीर), तुंगवेणा (तुंगभद्रा), विदिशा (वेतवा की छोटी शाखा नदी जिसके किराने भेलसा है), ताम्रा (कोशिकी की शाखा तामड़ नदी), शोणा, तमसा (टोंस), वराणसी (वरना और असी), पर्णाशा (बनास), मंदाकिनी, वैतरणी (उड़ीसा की वैतरणी), कोषा (उड़ीसा की कोसी), लोहित्या (ब्रह्मपुत्र की शाखा नदी), करतोया (बंगाल की इसी नाम की नदी), ऋषिकुल्या (इसी नाम से प्रसिद्ध जिसके तट पर गंजम नगर है।),

इस सूची से ज्ञात होता है कि गंधार की सुवास्तु नदी से असम की लौहित्य नदी, उड़ीसा की ऋषिकुल्या और वैतरणी, दक्षिण की तुंगभद्रा और पश्चिम की बनास नदी की परिक्रमा के अंतर्गत समस्त भू-खंड भारतीय भूगोल का अभिन्न अंग समझा जाता था। यह कहा गया है कि ये नदियाँ सबकी माता हैं[13] अर्थात् इनका वरदान सबके लिए है। आर्य और म्लेच्छ[14] और अनेक मिश्रित जातियों के लोग इन नदियों का जल पीते हैं। इस प्रकार जन का भूमि के साथ शाश्वत और निर्बाध संबंध स्थापित हो चुका था। आर्य और आर्योतर अन्य निषाद म्लेच्छ आदिक जातियाँ इस भूमि पर बसी हैं, यह प्रतीति प्राचीन काल के लोक-मानस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में भली प्रकार व्याप्त हो गई थीं। मातृभूमि के साथ सबका समान संबंध है और इस कारण समान अधिकार भी है। इसे ही प्रतीक भाषा में इस भाँति कहा गया है कि आर्य म्लेच्छ और मिश्रवर्ण के लोग सब इन नदियों का जल पीते हैं। राजा के राज्याभिषेक के लिए इन सब नदियों से अभिषेक का पवित्र जल लाया जाता था जो प्रत्येक भाग की सम्मति का प्रतीक था। पृथ्वी पर बने हुए जो लंबे राजमार्ग हैं वे उसके दूरस्थ भागों को एक दूसरे से मिलाते हैं, उन पर भी इसी तरह के समानाधिकार की बात पृथ्वी-सूक्त में कही गई है—

ये ते पन्थानो बहवो जनायता
रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापासतं पन्थानं
जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिंव तेन नो मृड॥

—(अथर्व. 12/1/47)

भारतभूमि का सर्वोत्तम परिचय उसके जनपदों के रूप में प्राप्त होता है। जनपद प्रचीन समय में विकसित होने वाले जातीय और सांस्कृतिक जीवन की स्थानीय इकाइयाँ थीं। आज भी इनमें से अधिकांश नाम भौगोलिक सच्चाई के रूप में जीवित हैं। पश्चिम से पूर्व तक जनपदों का ताँता चला गया था। वस्तुतः देश का शायद ही कोई ऐसा प्रदेश या भाग मिलेगा जिसका नामकरण जनपद के रूप में न हुआ हो। प्रायः दो पड़ोसी जनपदों के नामों के भौगोलिक जोड़े भाषा में प्रसिद्ध हो जाते थे, जैसे—कुरु-पंचाल, काशि-कोसल, अंग-मगध, गंधार-केकय, सिंधु-सौवीर, कपिश-कंबोज आदि। प्राचीन भुवन कोशों के अनुसार भारतीय जनपदों का सिलसिला कंबोज से शुरू होता है। कंबोज की ठीक पहचान पामीर प्रदेश है। कंबोज की राजधानी का नाम बौद्धग्रंथों में द्वारका था। इसे इस समय दरवाज़ कहते हैं। प्रचीन भूगोल-शास्त्रियों की दृष्टि में द्वारका या दरवाज़ मध्य एशिया के पठारों से उतरते वंक्षु नदी पार करके भारत में प्रवेश करने का दरवाजा था। महाभारत में बराबर कम्बोज को भारतीय जनपद मानकर उसका वर्णन किया गया है। कम्बोज प्रदेश की भाषा आर्य-परिवार की है। यास्क ने निरुक्त में और पतंजलि ने महाभाष्य में कंबोज जनपद की भाषा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उनके यहाँ 'शव' धातु का प्रयोग 'जाने' के अर्थ में होता था जो आज भी एक सच्चाई है। वंक्षु नदी का पूर्वार्ध कंबोज जनपद का प्रदेश था, जहाँ गल्चा भाषा-भाषी जातियाँ रहती हैं। वंक्षु नदी के बड़े उत्तरी मोड़ के पास मुंजानी कबीले के लोग आबाद हैं जो पुराने समय में मौंजायन कहलाते हैं। पाणिनि ने तीन सूत्रों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के गण-पाठ में मौंजायन लोगों का उल्लेख किया है[15]। वैदिक काल में यही प्रदेश मूजवंत कहलाता था (यजु. 3/61; अथर्व. 5/22/5) जो वाल्हिक के पड़ोस में था। कंबोज से कपिशा में घुसने का मार्ग मुंजान में होकर गया है। वंक्षु नदी के दक्षिण का बड़ा प्रदेश एक प्रकार से भारतवर्ष के प्रहरियों का कोठा है। भारतवर्ष से बाहर निकलने का महान् उत्तर-पथ तक्षशिला, उद्भांड (सिंधु के तट पर वर्तमान हुंड), पुष्कलावती (वर्तमान चारसद्दा), नगरहार (जलालाबाद), कपिशा (काफ़िरिस्तान), बामियान, बाल्हीक (बल्ख) की राजधानियों को मिलाता हुआ पूर्व में चीन और पश्चिम में एशिया यूरोप तक चला जाता था। मध्य एशिया और अफगानिस्तान के नक्शे पर निगाह डालने से गंधार, कपशि, बाल्हीक और कंबोज इन चार महाजनपदों का एक चौगड्डा नज़र आता है। नक्शे में इनकी भौगोलिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है। हिंदुकुश के उत्तर-पूर्व में कंबोज उत्तर-पश्चिम में वाल्हीक, दक्षिण-पश्चिम में कपिश, और दक्षिण-पूर्व में गंधार था। वंक्षु के दक्षिण का भाग भी तीन जनपदों मे बँटा हुआ था। हिंदुकुश और वंक्षु के बीच का बड़ा जनपद वाल्हीक था जो अभी तक बल्ख के नाम से प्रसिद्ध है। इसका पूर्वी भाग दो छोटे जनपदों में बँटा था। मुंजान के थोड़ा उत्तर जिसे आजकल बदख्शां कहते हैं पहले 'द्व्यक्ष' कहलाता था और जिसे आजकल कुंदूज कहते हैं उसका पुराना नाम कुंदमान था। वाल्हीक से एक मार्ग दक्षिण होता हुआ वामियाँ की घाटी में उतरता था। यहीं पर मध्य एशिया से आने वाले यात्रियों के स्वागत के लिए पहाड़ में काटकर दो विशाल बुद्ध प्रतिमाएँ बनाई गई थीं। वामियाँ के बाद प्रसद्धि जनपद कपिश था जिसका वर्तमान नाम काफ़िरिस्तान है। इसकी राजधानी कपिशा (आधुनिक बेग्राम) थी जिसका पाणिनि ने उल्लेख किया है। कपिश के बाद उससे मिला हुआ बड़ा जनपद गंधार था। गंधार कुनड़ या काश्कर नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ था। सिंध नदी इसको दो हिस्सों में बाँटती थी, पश्चिमी गंधार जिसकी राजधानी पुश्कलावती (वर्तमान चारसद्दा) थी और पूर्वी गांधार जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। मार्कंडेय पुराण में 'पुष्कलाः' जनपद का नाम आया है (57/59) जिसका स्थान पुष्कलावती होना चाहिए। पुष्कतावती काबुल और पंजकोरा नदी के संगम पर स्थित था। पंजकोरा का प्राचीन नाम गौरी नदी है। गौरी की ही शाखा नदी स्वात है जिसे प्राचीन काल में सुवास्तु कहते थे। सुवास्तु और गौरी नदियों के बीच में उड्डियान प्रदेश था जो गंधार का ही एक भाग समझा जाता था। उड्डियान के बने हुए चटकीले लाल किनारों वाले पांडु कंबल जातकों के समय में उत्तर भारत में सैनिक इस्तेमाल के लिए आते थे। वस्तुतः गंधार और उत्तरी भारत के व्यापारिक संबंध और भी कितने ही क्षेत्रों में घनिष्ठ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे। वैदिक समय से ही गंधार का ऊनी माल भारत में प्रसिद्ध हो गया था। कुनड़ या चित्राल नदी के उत्तरी हिस्से में चित्रक जनपद था जो वहाँ रहने वाले कबीले का नाम होना चाहिए। चित्राल और पंजकोरा या गौरी नदी के बीच का प्रदेश आजकल 'दीर' कहलता है। प्राचीनकाल में इसका नाम 'द्वीरावतीक (दो नदियों के बीच का प्रदेश) था। दीर के दक्षिण और काबुल नदी के उत्तरी किनारे पर मोहमंद कबीले बसते हैं जिन्हें महाभारत (भीष्म. 9/53) और पाणिनि (4/3/93) में मधुमंत कहा गया है। काबुल नदी के दक्षिण मोहमंदों के पड़ोसी अफ़रीदी लोग रहते हैं, इनका इलाका 'तीरा' कहलता है। अफ्रीदियों का पुराना संस्कृत नाम 'आप्रीत' था। आज भी वे लोग अपने को 'आप्रीदी' ही कहते हैं। तीरा पुराने समय में 'त्रीरावतीक' देश था (महाभाष्य 1/4/1; वा. 19)। कुभा (काबुल), वरा (वारा नदी जिस पर पेशावर है) और सिंधु इन तीन नदियों के बीच में होने के कारण यह हिस्सा त्रीरावतीक कहलता था।

पुराणों में भुवन-कोशों की उदीच्य देशों की सूची में लम्पाक (लघमान), चूलिक (काशगर), और जागुड़ (गज़नी) ये तीन नाम और भी आते हैं।

कश्मीर के उत्तर-पश्चिम में गिलगिल-यासीन का प्रदेश इस समय दर्दिस्तान और पहले दरद् कहलाता था। पूर्वी काश्मीर से आती हुई सिंधु नदी दरद् जनपद के बीच से बहकर दक्षिण की ओर मुड़ कर पहले-पहल पहाड़ों से मैदान में उतरती है। दरद् जनपद की पैशाची बोली थी; उसमें लिखी गई वृहत्कथा समस्त भारत कथा-साहित्य की खान थी जिसके कितने ही रूपांतर संस्कृत और प्राकृत में पाए जाते हैं।

गिलगित के उत्तर में हुंजा प्रदेश है, इसका पुराना नाम जनपदों की सूची के अनुसार हंसमार्ग ज्ञात होता है। आज भी हंस जाति के पक्षियों के लिए मध्य एशिया और भारत के बीच आने-जाने का यह एक ऐसा रास्ता है जिसमें होकर आकाश मार्ग से उनकी नदी सी बहती है। काश्मीर स्वयं एक महाजनपद था और इस घाटी के दक्षिण 'दार्व' और 'अभिसार' नामक दो छोटे जनपद थे। काश्मीर घाटी के पूर्व के पहाड़ों से बाहर कष्टवार के उत्तर मरुवर्द्धान नदी की घाटी है, जिससे आर्य लोग ऋग्वेद के समय में ही परिचित हो चुके थे (ऋ. 10/75/5, मरुद्वृधा नदी)।

सिंध के पूर्वी किनारे से सतलज तक के प्रदेश का पुराना नाम 'वाहीक' था। यह प्रदेश विभिन्न जातियों और कबीलों की खान है। मोटे तौर पर यहाँ का जनपदीय संस्थान इस प्रकार है। सिंधु से जेहलम तक का इलाका पूर्वी गंधार जनपद था, उसकी राजधानी तक्षशिला थी। इसी के बीचों बीच सोहन नदी बहती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, जिसका ऋग्वेद में सुषोमा नाम आता है। सिंध और जेहलम के बीच मे पूर्वी गंधार के दक्षिण का सिंध-सागर दोआबा पुराने समय में सिंधु जनपद कहलाता था। आज जिसे सिंध कहते हैं उसका पुराना नाम सौवीर था। सिंधु-सौवीर नामों का जोड़ा प्रायः साहित्य में मिलता है। जेहलम और चनाब नदियों के बीच में केकय जनपद था। आजकल के शाहपुर (सरगोधा) और गुजरात जिले उस में शामिल हैं। चनाब के पूर्व उत्तरी पंजाब का सबसे प्रसिद्ध जनपद मद्र था। इसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी जो आपगा (वर्तमान अयक) नदी के किनारे है। मद्र महाजनपद के दो भाग थे पूर्व मद्र और अपरमद्र। आधुनिक झंग-मघयाना और उसके नीचे रावी और चनाब के बीच का प्रदेश प्रीचन उशीनर था, इसे ही शिवि जनपद भी कहते थे जिसकी राजधानी शिविपुर (शोरकोट) थी।

रावी के पूर्व में हिमालय तक फैला हुआ पहाड़ी इलाका प्रचीन त्रिगर्त देश था जो रावी व्यास और सतलज की तीन नदी दूनों को मिलाकर बना था, इसका पुराना नाम जालंवरायण भी था। अब भी त्रिगर्त कांगड़ा का प्रदेश जालंधर कहलता है। यहाँ सदा से छोटे-छोटे रजवाड़ों का अस्तित्व रहा है। पाणिनि ने त्रिगर्त देश के छः संघ राज्यों का उल्लेख किया है। महाभारत के अनुसार त्रिगर्त के संसप्तकों की सेना दुर्योधन की ओर से लड़ी थी। पूर्वी पंजाब की सब से बड़ी भौगोलिक इकाई गुरु जनपद थी। वस्तुतः इसके तीन हिस्से थे—कुरुराष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल। ये तीन इलाके एक-दूसरे से सटे हुए थे। थानेश्वर के चारों ओर का प्रदेश कुरुक्षेत्र, हिसार का कुरुजांगल और हस्तिनापुन का कुरुराष्ट्र था। मोटे तौर पर सरस्वती से गंगा तक का प्रदेश कुरु जनपद के अंतर्गत था। गंगा-यमुना के बीच का लगभग मेरठ कमिश्नरी का इलाक असली कुरुराष्ट्र था, इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। भारतीय इतिहास में कुरु-जनपद का राजनैतिक महत्त्व और सांस्कृतिक प्रभाव दीर्घकाल तक सर्वोपरि रहा। उदीच्य और प्राच्य के बीच जो विभाजक भूमि है उसके अंतर्गत होने के कारण कुरुदेश का भौगोलिक महत्त्व बहुत बढ़ा-चढ़ा था। एक प्रकार से उत्तरापथ के चक्र का यह मध्य बिंदु जान पड़ता है जिसकें प्रभाव की किरणें पंजाब, उत्तरप्रदेश और राजस्थान पर समान रूप से पड़ती थीं। पूर्व और पश्चिम को मिलाने वाले व्यापारिक रास्ते और सैनिक प्रयाण के मार्ग कुरुजनपद के मध्य से गुज़रते थे। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से सब प्रकार के प्रभाव इस मध्य-बिंदु पर केंद्रित होते हैं। गंगा-यमुना के कांठों के बीच का यह भाग 'अंतर्वेदि' कहलता था। शकुंतला के पुत्र दौष्यंति भरत का जन्म हस्तिनापुर के पास गंगा के उस पार जहाँ मालिन (प्राचीन मालिनी) नदी गंगा में मिलती है, हुआ था। यहीं कण्य-आश्रम था। हस्तिनापुर को केंद्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बनाकर भरत के अपने राजनैतिक चक्र का विस्तार किया। उसने यमुना के किनारे-किनारे 78 और गंगा के किनारे-किनारे 55 यज्ञ करके समस्त पृथ्वी को जीत कर अपने चक्र में मिलाया[16]। भरत के द्वारा भारत नाम की व्युत्पत्ति हम देख चुके हैं।

मध्यदेश के मुख्य जनपद ये हैं–

पंचाल (बरेली से कन्नौज तक गंगा के दोनों ओर का प्रदेश), शूरसेन (मथुरा), शाल्य (अलवर से बीकानेर तक उत्तरी राजस्थान का भाग), मत्स्य (जयपुर, जिसकी राजधानी विराट आधुनिक बैराट थी), किरात (संभवतः नेपाल), काशि-कोसल (दो जनपद जो उत्तरप्रदेश के मध्य और पूर्वी भाग के अधिकांश क्षेत्र में फैले हुए हैं)। भुवनकोश के अनुसार मगध और अंग की गणना भी मध्यदेश के जनपदों में होती थी। अर्बुद (आन और अड़ावली पहाड़ का प्रदेश) भी मध्यदेश में सम्मिलित था। मध्यदेश में और भी छोटे-मोटे जनपदों के नाम पाए जाते हैं जैसे वत्स (प्रयाग कौशांबी का क्षेत्र), कुंति (चंबल और सिंध नदी के बीच का कोंतवार प्रदेश)।

जनपदों की गिनती करते हुए समस्त देश को मोटे तौर पर इतने हिस्सों में बाँटा गया है–उदीच्य, मध्यदेश प्राच्य, दक्षिण, अपरांत, विंध्य और पर्वतीय प्रदेश। मध्यदेश में लगभग उत्तरप्रदेश और बिहार शामिल थे। प्राच्य जनपदों में मुख्य नाम ये हैं– अंग (गंगा के उत्तर-दक्षिण भागलपुर का इलाका जिसमें मुंगेर भी शामिल है)। बिहार में गंगा के उत्तर विदेह और मिथिला का प्रदेश पूरी तरह आर्यों के भूसन्निवेश के अंतर्गत आ चुका था। दक्षिण में मगध जनपद (आधुनिक बिहार, गया और राजगृह) जरासंध के बाद से आर्य क्षेत्र बन गया, किंतु उसके दक्षिण पहाड़ों का इलाका प्रायः निषाद जातियों से भरा हुआ था। राजगृह में मणिनाग और जरा यक्षी की पूजा निषाद संस्कृति की बची-खुची परंपराओं का संकेत करती है। मध्यदेश से प्राच्य जाने के लिए अयोध्या से श्रावस्ती होता हुआ मुख्यतः गंगा के उत्तर का रास्ता था। मिथिला से दक्षिण मुड़कर गंगा पार करता हुआ यही मार्ग मगध में घुसता था और दूसरी ओर गंगा के किनारे उत्तरी बंगाल में प्रवेश करता है। उत्तर बंगाल का पुराना नाम 'पुण्ड्रवर्धन' था जिसकी राजधानी महास्थान थी, महानगर या उच्चैःनगर भी कहते थे। गंगा के पूर्वी किनारे पर अंग्रेजाबाद था जो अब मालदा कहलाता है। इसकी राजधानी गौड़पुर हुआ करती थी। इसका उल्लेख पाणिनि (6/2/100) में हुआ है। कुछ समय बाद गंगा के दक्षिण में भी आर्य बस्तियाँ बनने लगी होंगी और इस नई भूमि का साहित्य में सार्थक नाम 'वर्धमान' मिलता है। इस प्रदेश में नवनगर नाम से एक नई राजधानी बनी जिसकी पहचान नवद्वीप (नदिया) से की जा सकती है। वर्धमान के दक्षिण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में प्राचीन सुह्म जनपद था जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति थी। इसे ही राढ देश भी कहा गया है। गंगा और सागर के संगम का भाग समतट कहलता था। पूर्वी छोर पर जहाँ ब्रह्मपुत्र और गंगा की धाराएँ समुद्र से मिलती हैं वहाँ पश्चिम में वारिषेण (आधुनिक बारीसाल) और पूर्व में सूरमस जनपद था। सूरमस का उल्लेख अष्टाध्यायी (4/7/170) में हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि कम से कम ईसा से 500 वर्ष पहले सूरमा नदी की दून और पर्वत उपत्यका में आर्य-प्रवेश हो चुका था और असम (आसाम) से बाल्हीक तक का भू-खंड भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अभिन्न अंग बन चुका था। असम प्रांत की एक संज्ञा प्राग्ज्योतिष भी मिलती है। संभवतः ब्रह्मपुत्र के उत्तर-पूर्वी कोने का पहाड़ी जोता इस नाम से प्रसिद्ध था। महाभारत के तीर्थ-यात्रा-पर्व में लौहित्य (ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी) और उसके समीप संवेद्य तीर्थ का वर्णन है जो कि वर्तमान लोहित के किनारे का सदिया जान पड़ता है (वन. पूना, 83/1)।

भारत के मध्य का विस्तृत भू-खंड विंध्यपर्वत के भूगोल से संबंधित है। भूमि की मेखला के सदृश होने के कारण ही संभवतः इसका मुख्य-भाग मेकला कहा गया, जहाँ नर्मदा और शोण के उद्गम हैं। पृथक् भूमियों की दृष्टि से अवंति (मालवा), चेदि (जबलपुर से ओंकार मांधाता तक का प्रदेश), कोसल (छत्तीसगढ़), एवं उससे पूर्व उत्कल या कलिंग के महाजनपद मुख्य थे जिन्होंने भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। छोटे जनपदों की सूची में करूष (वघेलखंड), दशार्ण (भेलसा, वेत्रवती एवं अन्य बुंदेलखंड की छोटी नदियों का प्रदेश); निषध (नरवर या नलपुर), अनूप (माहिष्मती, चेदि का दूसरा नाम) हैं।

अपरांत या पश्चिम के जनपदों में शुपरिक, नासिक्य, भृगुकच्छ, कच्छ-माहेय (महीनदी का कांठा), सुराष्ट्र (काठियावाड़), सारस्वत (पाटन के पास सरस्वती का कांठा), आनर्त (उत्तरी गुजरात), अर्वुद (आबू-अड़ावली) हैं।

भारतीय भूगोल की एक बड़ी इकाई दक्षिणापथ के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है। भारतीय भूसन्निवेश का क्रमशः विस्तार होते-होते देश के दक्षिणी छोर कन्याकुमारी तक का समस्त भू-खंड भारतीय संस्कृति और भूगोल का अभिन्न अंग बन गया था। इस बड़े प्रदेश का शायद ही कोई ऐसा भाग हो जहाँ तीर्थों की कल्पना न की गई हो। नदी पर्वत जलाश्यों का नामकरण, तीर्थों की स्थापना, स्थलमाहात्म्यों की रचना एवं यातायात के लिए पथों का निर्माण, इन युक्तियों से दक्षिणापथ प्रदेश का हर एक हिस्सा मातृभूमि के चैतन्य केंद्र के साथ जुड़ गया। इस प्रसार के अनेक सूत्र धार्मिक और राजनैतिक इतिहास में पिरोए हुए मिलते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्रा, कावेरी, और ताम्रपर्णी की मुख्य जलधाराओं और उसकी अनेक सहायक नदियों के नाम प्रायः संस्कृत से निकले हुए हैं[17], जो भौगोलिक नामकरण के द्वारा भाषा के क्षेत्र में सांस्कृतिक एकता का संकेत करते हैं। दक्षिणापद में अनेक जनपद या जातीय भूमियाँ हैं, जिन्हें वहाँ नाडु कहते हैं। भुवनकोश सूची के अनुसार दाक्षिणात्य जनपदों के मुख्य नाम ये हैं—पांड्य, केरल, चोल, वनवासक (वैजयंती, आधुनिक वनवासी), महाराष्ट्र, माहिषक (दक्षिणी हैदराबाद), शबर (गोदावरी की सहायक शबरी नदी का प्रदेश), आटविक राज्य (बस्तर सम्भवतः इन्द्रवती नदी का प्रदेश), मलक (औरंगाबाद जिला) अश्मक (गोदावरी के दक्षिण अहमदनगर और भी जिले), ऋषिक (खानदेश), विदर्भ (बरार), कुंतल और आंध्र।

धुर पश्चिम में सिंध और बलूचिस्तान लगभग वैदिक काल से भारतीय भूगोल का अंग बन चुके थे। बलूचिस्तान की उत्तरी सीमा पर बहने वाली गोमल (वैदिक गोमती) और उसकी सहायक झाव (वैदिक यव्हवती) हैं। बोलन नाम की पहचान ऋग्वेदिक भलन से की जाती है। सुलेमान पर्वत का वैदिक नाम त्रिककुद् था जहाँ का सुरमा (त्रैककुदअंजन) आज भी पंजाब और सिंध में मशहूर है। यह प्रदेश पाणिनि के भूगोल का तो अभिन्न अंग बन चुका था। उत्तरी सिंध का नाम सौवीर था जिसकी राजधानी सिंध के किनारे का रौरुक नगर (वर्तमान रोड़ी) था। दक्षिणी सिंध 'सिंधुवक्त्र' कहलाता था और पूर्व का पारकर जिला पारस्कर। वस्तुतः मध्य सिंध में अत्यंत शक्तिशाली ब्राह्मणक जनपद नामक संघराज्य था जिसके स्वातंत्र्य प्रेम की प्रशंसा यूनानी लेखकों ने की है। सिंधु-बलूचिस्तान की सीमा पर स्थित हाला पहाड़ का नाम साल्वका गिरि था। उसके पश्चिम का प्रदेश पारद जनपद कहलता था। जिसकी पहचान बलूचिस्तान के हिंगुला नदी के प्रदेश से की जा सकती है। उसके पश्चिम मकरान का रेगिस्तान पारदायन कहलाता था। इस समस्त सूखे प्रदेश के निवासियों को महाभारत में देवमातृक कहा गया है अर्थात् वहाँ के लोग खेती के लिए इंद्र पर निर्भर थे (इंद्रकृष्टैर्वर्तयंति धान्यैः)। मध्य बलूचिस्तान में मूला नदी के तट पर जो आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है मौलेय लोगों का निवास था जिनका उल्लेख वसातियों के साथ कई बार महाभारत में आया है। वसाति की पहचान आधुनिक 'सीबी' से की जाती है। दक्षिणी अफगानिस्तान से एक प्रसिद्ध रास्ता बोलन दर्रे को पार करके उत्तरी बलूचिस्तान में उतरता था और वसातियों के देश में होकर पंजाब की ओर बढ़ता था। कंधार के आस-पास का प्रदेश भारतीय आर्थिक व्यवस्था से संबंधित था, इसका प्राचीन नाम हारहूर था। वहाँ के काले रंग के अंगूर जिनका उल्लेख कौटिल्य ने किया है, ठीक चमन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के रास्ते भारत में आते थे। सभी पुराणों में हारहूर की गणना भारतीय भुवनकोश के उदीच्य देशों के अंतर्गत की गई है। हारहूर नाम प्राचीन ईरानी 'हरव्हैती', संस्कृत सरस्वती (आधुनिक अरगंदाब) से बना है। हेल्मंद नदी का प्राचीन नाम हएतुमंत संस्कृत सेतुमंत था जो सरस्वती के ही प्रस्रवण क्षेत्र का एक अंग थी।

इस प्रकार प्रचीन भारतीय भुवनकोश के अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मध्य एशिया के पामीर-प्रदेश से लेकर दक्षिण समुद्र तट तक एवं बलूचिस्तान से असम प्रांत तक की भौगोलिक सीमाओं तक देश की इकाई साहित्य और संस्कृति का एक अंग बन चुकी थी। राजनैतिक क्षेत्र में अन्य देशों की भाँति हमारे इतने बड़े देश की एकता इतिहास की कशमकश के भीतर से कभी प्रकट होती और कभी लुप्त हो जाती थी। अशोक के विजित में उत्तर-पश्चिम से लेकर लगभग मैसूर तक का प्रदेश सम्मिलित था। किंतु राजनैतिक एकता के उतार-चढ़ाव से कहीं ऊपर देश की सांस्कृतिक एकता थी। बहुत तरह की विविधताओं के भीतर से उसकी प्राप्ति भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी विजय है। यहाँ के इतिहास का यही मूलसूत्र ज्ञात होता है कि जातीय भूमियों की निजी विशेषताओं की रक्षा करते हुए एक सर्वोपरि आध्यात्मिक एकता को जनता के मानस ने स्वीकार किया। भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, कला और जीवन के विविध क्षेत्रों में उस एकता को हम अनेक प्रकार से पल्लवित हुआ देखते हैं। भारतवर्ष भूगोल एक स्वयंसिद्ध इकाई है। उसकी उत्तरी पर्वत-शृंखला एवं देश के भीतरी भाग के पहाड़ एक दूसरे के साथ घनिष्ठ प्राकृतिक संबंध रखते हैं। उनसे दूर-दूर तक मेघों के वर्षा जलों का और नदियों की धाराओं का अपसी संबंध बनता है। देखने में सिंध और ब्रह्मपुत्र पश्चिमी समुद्र और पूर्वी समुद्र में मिलने वाली नदियाँ हैं, परंतु वे दोनों एक उद्गम से प्रकट होती हैं और एक ही भूमि के जलीय संस्थान की अभिन्न अंग हैं। भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष दक्षिणी एशिया के भूगोल की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। उसकी मध्यवर्ती स्थिति ऐसी है कि थल और जल के सभी मार्ग चारों ओर से आकर भारतीय भूमि पर मिल जाते हैं। यह स्थूल सत्य इतना बलिष्ठ है कि इसने सदा ही भारतवर्ष के इतिहास का नियंत्रण किया है। मध्य एशिया, मंगोलिया, ईरान, अरब, यूनान और रोम हिंदेशिया और अफ्रीका इस सब के पथसूत्र भारतवर्ष के साथ उसी प्रकार मिले हुए थे जैसे पहिये की पुट्ठी से आनेवाले अरे नाभि से जुड़े रहते हैं। यही कारण है कि शायद ही इन देशों के इतिहास में कोई आँधी ऐसी उठी हो जिसका प्रभाव इस देश पर न पड़ा हो।

भारत के मानचित्र पर दृष्टि डालने से उसके दक्षिण में फैले हुए भारतीय महासागर की ओर भी ध्यान जाता है। इस महासागर को भारतीय प्रायद्वीप ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूर तक समुद्र में घुस कर दो भागों मे बाँट दिया है, पश्चिम में अरब समुद्र (प्राचीन रत्नाकर) और पूर्व में बंगाल की खाड़ी (प्राचीन महोदधि)। इन दोनों समुद्रों में लगभग तीन हजार मील लंबी तट-रेखा है। इस तट पर हमेशा से बहुत से सुंदर जलपत्तन या तटपत्तन रहे हैं। शूर्पारक (सुपारा) भरुकच्छ (भड़ोस), कावरीपत्तन (कावेरी के मुख पर पुहांर) मसुलीपत्तन विशाखा-पत्तन कलिंगपत्तन, ताम्रलिप्ति आदि अनेक प्राचीन पोतपत्तन थे, जहाँ से द्वीपांतरों में आवागमन और व्यापार होता था। भुवनकोशों में इस भूमि को समुद्र से घिरा हुआ (सागर-संवृत) कहा है। साहित्य में इसे बारंबार समुद्रों की जड़ाऊ करधनी (रत्नानविद्धार्णमेखला) पहनने वाली कहा गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में राजा के राज्याभिषेक की जो प्रतिज्ञा पाई जाती है उसमें समुद्र पर्यंत पृथ्वी के एकछत्र राज्य का आदर्श आरंभ में ही मान लिया गया था। वेदव्यास की दो कल्पना के अनुसार दोनों समुद्र भारत मेदिनी के चितवन हैं (समुद्रापांगा, आदि. 67/28) । गुप्त-सम्राटों ने बड़े गर्व से अपने यश का प्रसार चार समुद्रों की सीमाओं (चरुतुदधि सलिलास्वादितयशसः) तक कहा है। कालिदास के 'आसमुद्रक्षितीशानाम्' और हर्ष के 'चतुरुदधि मेखलाया भूवो भर्ता' पदों में भी समुद्रों के आधिपत्य की यही ध्वनि पाई जाती है। भारत ने अपने अप्रतिहत सामुद्रिक अधिकार द्वारा अत्यंत विस्तृत वृहत्तर भारत का निर्माण किया था। जावा, सुमात्रा, (श्री विजय), मलय, कंबुज, चंपा, स्याम (द्वारावती) केड़ा (कटाहद्वीप) बोर्निया (वारुण द्वीप) आदि द्वीपांतर भारत के अंतर्गत समझे जाने लगे थे। अतएव पुराणकारों ने वृहत्तर भारत न कहकर मातृभूमि और द्वीपांतरों को मिलाकर भारत कहना शुरू किया जैसा कि इस वचन से ज्ञात होता है–

'इन भारतवर्ष के नौ भाग जानने चाहिए उनके बीच में समुद्र की दूरी है। आपस में वे अगम्य हैं।' नौ साधन द्वारा समुद्र पार किए बिना एक द्वीप से दूसरे द्वीप में नहीं जाया जा सकता।

इंद्रद्वीप, केसरु द्वीप, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गंधर्वद्वीप और वारुण द्वीप–ये आठ द्वीप हैं और उनमें नौवां यही द्वीप है जो समुद्र से घिरा हुआ है[18]।

यहाँ पुराण-लेखक ने नवें द्वीप का नाम न बताकर केवल 'अयं' पद से उसका संकेत किया है (अयंतु नवमस्तेषां द्वीपः सागर संवृतः) क्योंकि वह स्वयं यहीं बैठकर लिख रहा था; किंतु राजशेखर ने काव्य मीमांसा (अ. 17) में इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि भारतवर्ष के जो नौ भाग हैं उनमें इंद्रद्वीपादि आठों के अतिरिक्त नवाँ कुमारी द्वीप है। इस प्रकार एक समय (संभवतः गुप्तकाल में) वृहत्तर भारत के द्वीपांतरों को मातृभूमि के साथ मिलाकर 'भारतवर्ष' इस भौगोलिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संज्ञा के अंतर्गत मानने लगे थे। हिंदेशिया के ये द्वीप संस्कृति, कला, भाषा आदि की दृष्टि से भारत के अंग समझे जाने लगे थे। निश्चय ही इस धारणा के मूल में यह विश्वास भी था कि भारत को द्वीपांतरों के साथ मिलाने वाले समुद्र भी भारतीय भूगोल के अभिन्न अंग हैं। प्राकृतिक भूमि-रचना एवं इतिहास दोनों की साक्षी भारत को अपने दक्षिण के समुद्रों पर मातृभूमि जैसा ही पर्ण अधिकार प्रदान करती है। भारतवर्ष ने यह श्लाघनीय स्थिति, आसुरी देश-विजय अथवा राजनैतिक छीना-झपटी से नहीं प्राप्त की। यह विशुद्ध सांस्कृतिक विजय थी। धर्म और संस्कृति के वरदानों को लेकर भारतवासी उन द्वीपों में पहुँचे और उनका उन्मुक्त स्वागत हुआ। भौतिक समृद्धि और विचार-संस्कृति के क्षेत्र में उन देशों का उपकार करने के कारण भारतवर्ष के साथ उनका संबंध मातृभूमि जैसा ही घनिष्ठ हो गया, यहाँ तक कि वहाँ के राजा भारतवर्ष के साथ अपना विवाह संबंध करने के लिए उत्सुक रहते थे।

इस प्रकार पूर्व और पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में भारतीय भूगोल की दृष्टि से कई तथ्य ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम तो भारतीय साहित्य के सबसे प्राचीन भौगोलिक अंश भुवनकोशों के अनुसार उत्तर में वाल्हीक और कंबोज (बल्ख और मध्य एशिया) तक भारत भूमि का विस्तार माना जाता था। इसकी प्राकृतिक सीमा वंक्षु नदी थी। ठेठ पश्चिम की ओर हारहूरक (अरगंदाब) से लेकर बलूचिस्तान के पारद-प्रदेश (हिंगुलाज) तक यह सीमा चली गई थी। हिमालय में गंगा के अंतिम छोर तक जहाँ उसकी सबसे उपरली धारा जाह्नवी का उद्‌मग जंस्कर शृंखला से होता है भारत की सीमा थी। इस समय भी यह सीमा लगभग वहीं तक है। कैलास और मानसरोवर भी सदा से भारतीय भूगोल के अंतर्गत रहे हैं। राजशेखर ने तो स्पष्ट कहा है कि कुमारी पुर (कन्याकुमारी) से लेकर बिंदुसर (मानरसरोवर) तक भारत के चक्र अर्थात् राष्ट्र का विस्तार है[19]। पूर्व दिशा में भारतीय सीमा का विस्तार लौहित्य-प्राग्ज्योतिष तक था। लौहित्य के उस पार बर्मा, चीन, तिब्बत के धनुषाकार भाग में किरात जातियों का निवास था, इसलिए पुराणों में कहा है कि भारत के पूर्व में किरात बसे हैं[20]। दक्षिण दिशा में कन्याकुमारी तक भारतभूमि का अखंड विस्तार उसके भूगोल का पहला सत्य था। रत्नाकर और महादधि समुद्रों का भारत के साथ संबंध भारत के दक्षिणी भूगोल का दूसरा सत्य सदा से रहा है। इसी भूगोल की तीसरी ऐतिहासिक सच्चाई उस रूप में प्रकट होती है जब समुद्र के उस पार के कितने ही द्वीप जो आज तक भारतीय द्वीप-समूह के नाम से विख्यात हैं, भारत के अंतर्गत माने जाने लगे थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संदर्भ

1. शुतुद्रि-सतलज। परुष्णी-रावी। असिक्नी-चनाव।
मरुद्वृधा-कश्मीर के कष्टवार प्रदेश की मरुवर्द्धन नदी जो चनाव में मिलती है। वितस्ता-झेलम। आर्जीकीया-विपाशा या व्यास। सुषोमा-अटक जिले में सिंधु की सहायक सोहन नदी।
2. सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते॥ मनु. 2/17।
3. तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥ (मनु. 2/18)
4. मत्स्य=जयपुर, अलवर आदि का प्रदेश।
5. शूरसेन=मथुरा, आगरा, अलीगढ़।
6. मंचाल=कन्नौज, फरुखाबाद, बरेली।
7. एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (मनु. 2/20)
8. इसकी ठोस पहचान राप्ती नदी है, राप्ती का पुराना नाम इरावति था। इरावती और सदानीरा में अर्थसाम्य है। महाभारत के समापर्व में गंडक और सरयू के बीच में सदानीरा का वर्णन है जो राप्ती ही हो सकती है।
9. आसमुद्रातु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्यो रार्यावर्त विदुर्बुधाः॥ –(मनु. 2/22)
10. इसी से मिलती-जुलती वह परिभाषा है जिसमें लंकास्थित त्रिकुट-पर्वत और उत्तर के हिमवान् के बीच का क्षेत्र भारतवर्ष माना गया–
त्रिकूट हिमवदन्र्वर्षो भारत उच्यते। (अपराजित पृच्छा 37/7) अथवा इसे ही और भी अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि भारतवर्ष उस क्षेत्र की संज्ञा है जो त्रिकूट से हिमाद्रि तक विस्तृत है, जिसके उत्तर में हिमवान् का लंवा डंडा खिंचा है, और दक्षिण में पूर्व पश्चिम के दोनों समुद्र जिसके अभिन्न अंग हैं–आत्रिकूटं हिमा यन्तं योजनैः शतपंचभिः। पूर्वापरी तोयनिधी हिमदण्डश्च भारते॥ अपराजितपृच्छा 38/19
11. हिमवान् हेमकूटश्च निषधो मेरु रेवच। चैत्रः कर्णी च शृंगी च सप्तैते वर्ष पर्वताः॥
12. महेंद्रो मलयः सह्यः शुक्तमान् ऋक्षपर्वतः। विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुल पर्वताः॥ –(भीष्म. 9/11)
13. विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः।
इत्येताः सरितो राजन्समाख्याता यथास्मृति॥ –(भीष्म. 9/37/38)
14. आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य तैमिश्राः पुरुषाा विभो।
नदीः विपन्ति विपुलां गंगा सिंधु सरस्वतीम्॥ –(भीष्म. 9/13-14)
15. वामन्यादि 5/3/116 (मौंजायनीय);
शार्ंगरवादि, 4/1/73 (मौंजायनी);
नडादि, 4/1/99 (मौंजायन)।
16. भरतो दौष्यन्तिः समन्तं सर्वतः जयन् परीयाय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु। गंगायां वृत्रघ्नेऽवध्नात् पंच पंचाशतं हयात्। –(एतरेय. 8/23)

परः सहस्रन् इन्द्राशाश्वान् मेध्यान् य आहरद् विजित्य प्रथिवीं सर्वा मिति। (शतपथ. 13/5/4/13)

17. जैसे—अकंवता (कावेरी की शाखा)।
चित्रवती और पापघ्नों (कोलार जिले में उत्तर पिनाकिनी की शाखाएं); वेदवती (चीतलद्रुग जिला, तुंगभद्रा की शाखा); स्वर्णमुखी (जयमंगली नदी की शाखा जो स्वयं उत्तर पिनाकिनी में मिलती है); वीर वैष्णवी, शिंशा, कण्वा, भवानी, हेमावती, लक्ष्मणतीर्या, लोकपावनी (ये सब कावरी के प्रस्रवण क्षेत्र की नदियाँ हैं), वसिष्ठी, मुचकुंदी, चंद्रगिरि, वाङ्मयी (कोट्टयम के पास), शरावती, सुवर्णा, नत्रवती, कालिंदी (ये छोटी नदियाँ सह्याद्रि से निकलकर रत्नाकर या पश्चिमी समुद्र में मिलती हैं)।

18. भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निवोधत।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम्॥
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णी गभस्मिान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः
अयन्तु नवमस्तेपां द्वीपः सागरसंवृतः।
(मत्सय. 114/7-9; वायु. 1/45/78-80; मार्कडेय 57/6-7)

19. कुमारी पुरात् प्रभूति विन्दुसरोवधि...चक्रवर्ति क्षेत्रं।
तां विजयमानश्चक्रवर्ती भवति। (काव्यमीमांसा अ. 17)

20. योजनानां सहस्रन्तु द्वीपोयं यक्षिणोंतरात्।
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः। (विष्णु. 2/3/8)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-4

पृथ्वी सूक्त

'भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ'

मातृभूमि का जो स्थूल रूप है वह भूमि पर रहने वाले जन की एकता का आधार है। देश के स्थूल रूप पर आश्रित इस ऐक्य के भाव से अधिक मूल्यवान् मनुष्यों के मन की यह भावना है कि पृथ्वी हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र हैं। माता और पुत्र का यह संबंध नित्य और देवी धरातल पर होता है। वह किसी भी प्रकार समाप्त नहीं किया जा सकता। उस संबंध के मूल में अनंत पोषक रस है जो पुत्र को माता के प्रति सदा कर्तव्य परायण रखता है और उसके मन में कृतज्ञता का भाव भरता है। देशव्यापी मौलिक एकता की प्रतीति के लिए मातृभूमि और जन के बीच में 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' की अनुभूति दृढ़ चट्टान की तरह है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में इस सत्य की पहचान पूरी तरह कर ली गई थी। मातृभूमि के प्रति भारतीय भावना का सुंदर वर्णन अथर्ववेद के पृथ्वी-सूक्त (12/1/1-36) में पाया जाता है। मातृभूमि के स्वरूप और उसके साथ राष्ट्रीय जन की एकता का जैसा बहुमुखी सक्षम वर्णन इस सूक्त में है वैसा विश्व के प्राचीन साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। इन मंत्रों में एक ओर पृथ्वी की वह प्रशस्त वंदना है जैसी कृतज्ञता से भरा हुआ मानव-हृदय अनंत उपकारों की जननी अपनी माता के प्रति करता है। साथ ही भूमि पर जन और संस्कृति के विकसित होने के जो नियम हैं उनका विवेचन भी इस सूक्त में है। अतएव राष्ट्रीयता एवं जन की मौलिक एकता के परिचय के लिए पृथ्वी सूक्त के भावों का हम विशद उल्लेख करेंगे।

कवि की दृष्टि में यह भूमि राष्ट्रीय जन की भौतिक स्थिति का आधार है। यह भूमि कामदुधा है। जन की समस्त कामनाओं का दोहन भूमि से इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार होता है जैसे अडिग भाव से खड़ी हुई धेनु दूध की धाराओं से पंहाती है। पृथ्वी के इस भौतिक दुग्ध के पीछे एक अमृत है जिसने जन को अमरता प्रदान की है। स्वार्थ और निजी पोषण से ऊपर उठकर व्यक्ति जब जन के अमर जीवन को पहचानता है तब वह भी अमरता का आनंद पाता है। मातृ-भूमि की पोषण-शक्ति अनंत है, वह 'विश्वम्भरा' है। एक व्यक्ति या समुदाय के लिए मातृभूमि के वरदान नहीं हैं, उसका दुग्ध समस्त पुत्रों के लिए है। इसलिए कवि ने पृथ्वी को 'विश्वधायस्' (27)[1] सबका भरण-पोषण करने वाली कहा है। यह विश्वास समस्त जन को मातृभूमि के साथ समान रूप से बाँधता है। भूमि के वरदानों के समान वितरण में जब रुकावट पड़ती है तब इतिहास की सिमटी हुई शक्तियाँ प्रचंड वेग से उस रुकावट को हटा देती हैं, इसके लिए फिर चाहे कितना भी मूल्य चुकाना पड़े।

पृथ्वी का स्थूल रूप अनेक प्रकार से आकर्षण की वस्तु है। भौतिक रूपों में जो श्री या सुंदरता है, उस पर प्रत्येक देश के जन को उचित गर्व होता है। सृष्टि में जो सौंदर्य की निधि है उसका पर्याप्त भाग हमारी भूमि को भी मिला हुआ है। मातृभूमि की प्रत्येक दिशा रमणीयता से भरी हुई है (आशां आशां रण्यां, 43)। वस्तुतः पृथ्वी विश्वरूपा है, सारे रूपों की खान है। पर्वतों के उष्णीय और समुद्रों की मेखला से अलंकृत मातृभूमि पुष्कल सौंदर्य की प्रतिमा है। इस सौंदर्य की आकर्षण-रश्मियां देश में चारों ओर फैलती हुई मनुष्यों के मन को अपनी ओर खींचती हैं। इस प्रकार भूमि और जन के घनिष्ठ संबंध का एक अपूर्व विधान तैयार होता है। अनंत सौंदर्य की खान हिमालय की देवभूमियाँ भारतीय जनता के मन को एक-रस बनाने में कितनी सहायक हैं? राष्ट्रीय दृष्टि से अपने सौंदर्य-स्थलों की पूरी पहचान और ख्याति करना प्रत्येक देश का आवश्यक कर्तव्य है। प्राकृतिक शोभा मातृभूमि के शरीर का ऐसा लावण्य है जो युग-युगों तक मातृभूमि के प्रति हमारे आकर्षण को बढ़ाता है। कवि प्रार्थना करता है कि भूमि के सौंदर्य के दर्शन करने के लिए सौ वर्षों तक हमारे नेत्रों की ज्योति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे और हमें सूर्य का अनुराग प्राप्त हो (33)। चारों दिशाओं में फैले हुए मातृभूमि के चतुरस्रशोभी शरीर को देखने के लिए जन के पैर उसे दिशाओं के अंत तक ले जाते हैं। पैरों की छाप से भूमि पर मार्ग बनते हैं। संचरणशीलता से हम दिशाओं के कल्याणों को प्राप्त करते हैं (31)[2]। जिस प्रदेश में जनता की पद-पंक्ति पहुँचती हैं वह भूसन्निवेश का तीर्थ बन जाता है। जनता की पद पंक्तियों द्वारा ही मातृभूमि के विशाल जनायन पंथों (मनुष्यों के लिए आने-जाने के मार्गों) का निर्माण होता है। यात्रा के बल से ही रथों के पथ और संकटों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के मार्ग भूमि पर बिछ जाते हैं (ये ते मंथा बहवो जनायना) रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे (47)। पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण को धुराधुर मिलानेवाला पथों का जाल मातृभूमि की एकता का प्रत्यक्ष रूप है। किसी समय पर्वतों और महामकांतारों की भूमियाँ आदि जन के पद-संचार से परिचित हुईं; 'चारिकं चरित्वा' के व्रती पथ यात्रियों ने स्थान-स्थान पर पहुँच कर पुर और जनपदों में नए मंगल का आरंभ किया। इस प्रकार मातृभूमि के केंद्र का विस्तार हुआ। उसके दिगन्तों में पड़े हुए दीप्ति-पट्ट उठ गए। नए भुवनों का प्रकाश उसके सीमांत में भर गया और चतुरंत पृथ्वी के रूप का निर्माण हुआ।

आरम्भिक भू-प्रतिष्ठा के दिन जब जनता ने भूमि पर अपने पैर टेके तो मनुष्यों ने ललक कर मातृभूमि के स्वरूप का घनिष्ठ परिचय प्राप्त किय। उन्नत प्रदेश, निरंतर बहने वाली जल धाराएँ और हरे-भरे समतल मैदान (यस्या उद्धतः प्रवतः समं बहु, 2) इन तीनों ने मिल कर भूमि का रूप-संपादन किया है। छोटे-छोटे गिरिजाल और हिमराशि का श्वेत मुकुट बाँधे हुए महान् पर्वत सच्चे अर्थों में महीधर बनकर पृथ्वी को टेके हुए हैं। उनके ऊँचे शृंगों पर जमी हुई हिम-राशि, अधित्यकाओं में सरकते हुए बर्फानी गल (हमश्रथ), उनके मुख्य बांक से निकलने वाली नदियाँ, तटांत में बहने वाली सहस्रों धाराएँ, पर्वतस्थली और द्रोणी, निर्झर और नदियों की झूलती हुई तलहटियाँ, शैलों का दारण करके बनी हुई दरी और कंदराएँ, पर्वतों के पार जाने वाले जोत और घाटे—इन सबका अध्ययन भौमिक चैतन्य का एक आवश्यक अंग है। विश्वकर्मा ने जिस दिन मातृभूमि की रचना के मंगल यज्ञ में अपनी हवि डाली थी उस दिन ही उसमें पर्वतों का अंश पर्याप्त मात्रा में रख दिया था। महान् गिरिराज इस देश का विस्तृत वर्ष-पर्वत है जो उसे औरों से पृथक् करता हुआ एक सुदृढ़ भौगोलिक संस्थान का अंग बनाता है।

पर्वतों की सूक्ष्म छान-बीन भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। हिमालय के दुर्धष गंड शैलों को चीर कर यमुना, जह्नवी, भागीरथी और अलकनंदा ने केदारखंड में तथा सरयू, काली, कर्णली ने कैलास मानसखंड में करोड़ों वर्षों के परिश्रम से पर्वतों को तोड़कर ढोकों का निर्माण किया, उन्हें चूर करके हिमालय के बहिर्गिरि प्रदेश को गंगलोढों से पाट दिया, और पुनः नदियों के इस विक्रमशील घराट ने गंगलोढ़ों को महीन पीसकर अंतर्वेदी का निर्माण किया। इस प्रकार नदियों के वार्षिक ताने-बाने से विस्तृत समतल प्रदेश अस्तित्व में आए। कालांतर में उनके साथ जन का संबंध हुआ। जिस पराक्रमशालिनी गंगा ने मातृभूमि के हृदय स्थानीय मध्यदेश को जन्म दिया है उस देवनदी गंगा को समस्त राष्ट्र ने पवित्र और मंगल्य माना। गंगा राष्ट्रीय ऐक्य की शाश्वत पताका है, उसके तटों पर हमारी संस्कृति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फली-फूली है। कवि कहता है कि स्थूल दृष्टि से पत्थर और धूल, चट्टान और मिट्टी के परस्पर गुँथने से यह भूमि दृढ़ हुई है। ऐसी भूमि को प्रणाम है[3]। चित्र-विचित्र चट्टानों से बनी हुई, भूरी काली और लाल रंग की मिट्टियाँ मातृभूमि को बहुरंगी चोला पहनाती हैं (बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिम्, 11)। इन्हीं मिट्टियों के अंतस्तल में स्वर्ण छिपा है जिससे मातृभूमि 'हिरण्य वक्षा' कहलाती है और सबके आदर के योग्य बनती है। यही मिट्टियाँ नाना प्रकार की वृक्ष वनस्पतियाँ ओषधियाँ उत्पन्न करती हैं। इन्हीं से पशुओं और मनुष्यों के लिए अन्न उत्पन्न होता है। मातृभूमि की मिट्टी में अद्‌भुत रसायन है। इसी से जन का शरीर बनता है। मातृभूमि की मिट्टी में जो निजी गंध है, वहीं राष्ट्रीय जन की अपनी विशेषता है।

जिस प्रकार पर्वत और उनसे बहनेवाली जलधाराएँ पृथ्वी के रूप को एकता प्रदान करती हैं उसी प्रकार प्रचंड वेग से चलती हुई हवाएँ अनेक प्रकार से हमारे जीवन की एकता बनाती हैं। हवाओं से वृष्टि का नियमन होता है और एक वृष्टि-चक्र के अनंर्गत भू-खंड एक वर्ष कहा जाता है। ऋतु-विज्ञान की दृष्टि से भारतवर्ष की अपनी इकाई। ग्रीष्म के अंत में उपयुक्त समय पर धूल उड़ाती हुई, पेड़ों को उखाड़ फेंकती हुई 'मातरिश्वा' नामक आंधी प्रचंड वेग से दक्षिण पश्चिम से उत्तर की ओर बहती है। इस दुर्धर्ष पुरोवात के बवंडर जब ऊपर नीचे चलते हैं तब बिजली कड़कती है और आकाश कौंध से भर जाता है[4]। प्रतिवर्ष देश का आकाश अंधड़ झंझावात और तडित्वंत मेघों से भर जाता है और भूमि वृष्टि से जलमयी हो जाती है (वर्पेण भूमिः पृथ्वी वृतावृता, 42)। प्राकृतिक जगत् की ये घटनाएं जनता के मानस को किस प्रकार एक दूसरे से मिलाती हैं। मेघजालों के इन उपकारों को याद करके कवि ने पर्जन्य को पिता (12) और भूमि को पर्जन्यपत्नी (42) कहा है—भूम्यै पर्जन्यपत्नये नमोऽस्तु वर्षमेदसे—वर्षा का का जल जिसमें मेद की तरह भरा है, पर्जन्यों की प्यारी उस भूमि को प्रणाम है।

मेघों की यह वार्षिक विभूति हमें समुद्र से मिलती है। जल से भरे हुए समुद्र नदी निझरों की धाराएँ, और अन्न से लहलहाते हुए खेत, इन तीनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है (यस्यां समुद्र उत्सिन्धुरोपो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवु; 3) दक्षिणी के गर्जनशील महासागरों के साथ भूमि का उतना ही अभिन्न संबंध है जितना कि उत्तर के पर्वतों के साथ। दोनों एक ही धनुष की दो नोक हैं। उत्तर और दक्षिण के ये भौतिक संबंध बहुत गहरे हैं। रमणीय पौराणिक कल्पना के अनुसार इस विस्तार के एक सिरे पर शिव और दूसरे पर पार्वती हैं और शिव तक पहुँचने के लिए कुमारी पार्वती दक्षिणी समुद्र-तट पर अखंड तप करती रहती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कवि की दृष्टि में यह भूमि अनेक जलधाराओं (भूरिधारा) से युक्त है। उनके जल रात-दिन आलस्य के बिना सब ओर बह रहे हैं[5]। वही जल भूमि की मिट्टी का रसायन पाकर हमारे लिए दूध बना जाता है। (पयोदुहाम्) और फिर अन्नरूप में शरीर के भीतर पहुँच कर बल और तेज देता है (उक्षतु वर्चसा)। कवि का कहना सत्य है। भूमि के जल और जनता के शरीर में बहनेवाले रक्त इन दोनों में घनिष्ठ संबंध है। दोनों को मिलाने वाला माध्यम अन्न है। मेघ और नदियों के जल पौधों के शरीर में पहुँचकर दूध में बदल जाते हैं और वह दूध ही गाढ़ा होकर जौ, गेहूँ और चावल के दानों के रूप में जम जाता है। प्रतिवर्ष यह क्षीरसागर हमारे खेतों में भर जाता है और यही दूध अन्न के रूप में मनुष्यों में प्रविष्ट होकर शक्ति और तेज उत्पन्न करता है। जो जल पृथ्वी पर बहते हैं वे पहले आकाश में विचरते हैं। वहाँ उनमें हदबंदी की लकीरें नहीं होतीं। आकाश के वायुमंडल में भरे हुए ये जल समग्र राष्ट्र की संपत्ति हैं। भारतीय कवि इसी कल्पना के अनुसार गंगा के पार्थिव जलों का स्रोत आकाश के दिव्य जलों में मानते हैं। मातृभूमि के हिस्से में आई हुई जलराशि पर्याप्त है, उसका उचित संग्रह और नियमित प्रवाह करके हम उन जलों को सबके लिए सुलभ बना सकते हैं।

भूमि के स्थूल रूप में उनके जंगल भी हैं। वन-संपत्ति और कृषि-संपत्ति, वनस्पतिजगत् के ये दो बड़े भाग हैं। पृथ्वी दोनों की माता है। एक ओर इसके वलिष्ठ पुत्र खेतों में अधिक परिश्रम करते हैं (क्षेत्रे यस्या विकुर्वते, 46) और भाँति-भाँति के जौ, चावल आदि अन्नों को उत्पन्न को उत्पन्न करते हैं (यस्यामन्नं ब्रीहियवी, 42)। ये लहलहाती हुई खेतियां (कृष्टयः, 3) हमारी राष्ट्रीय संपत्ति हैं। दूसरी ओर अनेक जंगल और वन हैं जिनमें तरह-तरह की ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। (नानावीर्या ओषधीर्या विभर्ति, 2)। यह धरती सब ओषधियों को उपजाने वाली माता है (विश्वस्वं मातरमोषधीनाम्, 17)। वर्षा ऋतु में ओषधियों की बाढ़ से पृथ्वी का शरीर ढक जाता है। षड् ऋतुओं के चक्र में ये ओषधियाँ पक कर मुरझा जाती हैं, तब उनके बीज इसी धरती में समा जाते हैं। पृथ्वी उन बीजों को सम्हाल कर रखनेवाली धात्री है। (गृभिः ओषधीनाम्, 57) देश के वातातपिक जीवन में पनपने वाली ये ओषधियाँ चाहे जिस भाग में हों समस्त जन के लिए हैं। प्रतिवर्ष नाना स्थानों में उत्पन्न होकर वे चारों खूँटों में फैल जाती हैं। मातृभूमि की एकता का स्वर्णिम अध्याय इन ओषधियों के जन्म और प्रयोग के रूप में प्रतिवर्ष सामने आता है।

वृक्ष और वनस्पति भी मनुष्य की तरह पृथ्वी के पुत्र हैं। यहाँ वे अडिग भाव से खड़े हैं (यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति, 27)। प्रत्येक की आयु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो समय से बँधी हुई है परंतु उनके बीज और उनकी नस्ल हमेशा जीवित रहते हैं। करोड़ों वर्षों से विकसित होते हुए वनस्पति जगत् के ये पुत्र परंपरा से हम तक पहुँचे हैं और आगे भी इसी प्रकार बढ़ते और फूलते-फलते रहेंगे। देवदारु और बरगद, आम और पीपल, उदुंबर और शाल ये अपने यहाँ के कुछ महाविटप है। आद्य भूसन्निवेश के समय महावृक्षों के साथ भी मनुष्य ने निकट का संबंध स्थापित किया था। 100 फुट ऊँचे और 30 फुट फेरे वाले ऊँचे देवदारु के वृक्षों को हिमालय के उत्संग में खड़े देखकर शिव के पुत्र कहकर उनका सम्मान किया गया। इस प्रकार वृक्ष-देवताओं की कल्पना हुई। नदी-देवता और रुक्ख-देवता भूमि से संबंधित धार्मिक भावना के अंग हैं। अनेक रूपों में आज भी ये जन-विश्वास जीवित हैं। समग्र देश के मन में एकता का भाव भरने में वृक्ष-लता और पुष्पों का भी बड़ा हाथ रहा है। हिमालय पर फूले हुए शाल-वृक्षों के नीचे होने वाली क्रीड़ाएँ शालमंजिका कहलाईं। उन्हीं की तरह रक्ता शोक के फूलों का चयन करके होने वाली क्रीड़ाओं को 'अशोक पुष्प प्रचायिका' नाम दिया गया। इस प्रकार की अनेक क्रीड़ाएँ नगर-नगर और गाँव-गाँव में फैल गईं और उनके अभिप्राय उत्सव-प्रिय स्त्री-पुरुषों के जीवन में भर गए। प्राचीन भारतीय साहित्य और कला के देशव्यापी अभिप्रायों में इनकी भी गिनती है। वसंत के आगमन काल में पुष्पों से जब धनलक्ष्मी नया शृंगार सजाती है तब समस्त भूमि मानो नवीन यौवन का स्पर्श पाकर गंध से महमहाने लगती है। कमल हमारी मातृभूमि का प्रतीक ही बन गया है। उसका स्मरण करते हुए कवि कहता है—हे भूमि जो तुम्हारी गंध है वही कमल में बसी हुई है, उसी सुगंध से मुझे भी सुरभित करो (यस्ते गंधः पुष्कर माविवेश तेन मा सुरभिंकृणु, 24)। अनेक व्यक्तियों के मनोभावों का वरदान पाकर राष्ट्रीय प्रतीक बनते हैं। कमल हमारे राष्ट्र का इसी प्रकार बना हुआ सर्वसम्मत प्रतीक है। अनेक साहित्यिक, धार्मिक और दार्शनिक भाव कमल के प्रतीक में मिले हैं।

पृथ्वी पर बसने वाले पशु और पक्षी भी हमारे राष्ट्रीय मनोभावों के अंग हैं। भारतीय संस्कृति के अनेक आदर्श उस प्रकार गौ में मिलते हैं, जिस प्रकार कि पहिए की नाभि में अरे। भूमि पर रहने वाली पशु संपत्ति भूमि के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना कि स्वयं मनुष्य। यह पृथ्वी गौओं और अश्वों के निवास का बहुविध स्थान है (गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा, 5)। देश के गोधन की नस्लें सहस्रों पीढ़ियों को घी और दूध से सींचती आई हैं। राष्ट्र के बालखिल्य बच्चे इसी क्षीर-गंगा के तट पर बड़े हुए हैं। गौओं के प्रति अनुकूलता और रक्षा का भाव राष्ट्रीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है जिसे पाकर जनता के मन शीघ्र एकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में बँध जाते हैं। सिंधु, कंबोज और सौराष्ट्र के तेज घोड़े देश में सदा से प्रसिद्ध रहे हैं। उनकी समृद्धि राष्ट्रीय उन्नति के साथ जुड़ी है। आकाश की गोद में भरे हुए पक्षी सुपर्ण और हंस भी मातृभूमि के पार्थिव रूप को सुंदर बनाते हैं (यां द्विपादः पक्षिणः संपतिन्ति हंसाः सुर्पणाः शकुनावयांसि, 51)। कहा जाता है कि इस देश में लगभग ढाई सहस्र जातियों के पक्षी हैं। प्रतिवर्ष मानसरोवर की यात्रा करके लौटने वाले हंस शरद् की शुभ्र चाँदनी में जब सरोवरों के तट पर उतरते हैं तब जंगलों में एक नया उत्सव दिखाई पड़ता है। पक्षियों के सुरीले कंठ और सुंदर रंग मातृभूमि की शोभा के प्रतीक हैं। वे हमारे जंगलों में अद्‌भुत चहल-पहल और अद्‌भुत आकर्षण बनाए रखते हैं। दक्षिणापथ के निवासी अनेक पक्षी समयानुसार उत्तर की यात्रा करते हैं, और इस प्रकार उत्तर-दक्षिण के ऋतुचक्र का संबंध सूचित करते हैं। पक्षियों के आवागमन और देशांतर यात्रा की खोज इस समय अत्यंत रोचक मानी जाती है। राष्ट्रीय गौरव की अभिवृद्धि में भी पशु, पक्षियों का ऊँचा स्थान होता है। किसी समय प्राचीन वावेरू देश में भारतवर्ष के मोरों की बड़ी माँग थी, लोग उनका सौंदर्य देखने के लिए उत्सुक रहते थे। प्राचीन केकय देश (आधुनिक शाहपुर—गुजरात) के प्रदेश में कुत्तों की एक बघेरी नस्ल थी जिसकी ख्याति यूनान देश तक पहुँची थी। आज तो नवीन विज्ञान की आँख से समुद्र की तलहटी में पड़े हुए सीप और घोंघों का भी अध्ययन किया जाता है। जितनी लख चौरासी वर्षा-ऋतु में उत्पन्न होकर सहसा रेंगने और उड़ने लगती हैं उनके साथ भी हमारे जीवन का कल्याण मिला हुआ है। एक-एक मच्छर या डांस के कुपित होने से समाज में उपद्रव मच जाता है।

इन पार्थिव कल्याणों से संपन्न मातृभूमि का स्वरूप अपनी खनिज संपत्ति के द्वारा ओर भी मनोहर बना है। यह पृथ्वी रत्न धात्री है, इसका वृक्ष सोने से चमकता है (हिरण्यवक्षा,6)। इसकी कोख अनेक रत्न मणि और सुवर्ण से भरी हुई है। अटल खड़ी हुई अनुकूल धेनु के समान मातृभूमि द्रव्य की सहस्रों धाराएँ हमें देती है। उनकी कृपा से राष्ट्र का कोष अक्षय निधियों से भरता है। 'हे विश्व का भरण करनेवाली, रत्नों की खान, हिरण्य से परिपूर्ण मातृभूमि, तुम जगत् की आधार हो। अनुकूल मन से हमारे लिए रत्नों का दोहन करो।[6]

जन

इस प्रकार अनेक रूपों में मातृभूमि के सुनहले सौंदर्य का वर्णन करके कवि और ऊँचे धरातल पर उठता है और भूमि एवं जन के संबंध के विषय में चर्चा करता है। भूमि पर जन का सन्निवेश बड़ी रोमांचकारी घटना मानी जाती है। किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्व युग में राष्ट्र के जन ने अपने पद इस पृथ्वी पर टेके और भू-प्रतिष्ठा[7] प्राप्त की। उसके भूत और भविष्य की अधिष्ठात्री यह मातृभूमि है–

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्नी (1)

जन सर्वप्रथम अजीत अहत और अक्षत रूप में भूमि पर पैर भी पृथ्वी का केंद्र ध्रुव और अडिग रह गया। इसका कारण यह है कि यह पृथ्वी सत्य की शक्ति से रक्षित है।

कवि की दृष्टि में मानव इस पृथ्वी पर अड़चन के बिना निवास करते हैं (असंबाधं बध्यतो मानवानां, 2)। प्रत्येक दिशा में जो हमारे देश की स्वाभावकि सीमा है वहाँ तक हमारी पृथ्वी का अप्रतिहत विस्तार होना चाहिए। हम कहीं से उत्क्रांत न हों (32), भूमि का आश्रय लेते हुए हमारे पैरों में कहीं ठोकर न लगे। (मा निपप्तं भुवने शिश्रियाणः, 31), जनता के दाहिने और बाएँ पैर ऐसी दृढ़ता से जमे हों कि वे लड़खड़ाएँ नहीं (पद्भ्यां दक्षिण सव्याभ्यां मा व्यथिश्महि भूम्याम्, 28)।

भूमि पर जनों का विस्तार स्वाभाविक रीति से चारों दिशाओं में होता है। कवि की दृष्टि में यह पृथ्वी अनेक जनों को अपने भीतर रखने वाला एक बर्तन है। (त्वमस्यावपनी जनानाम् 61)। इस पात्र की तीन विशेषताएँ हैं, एक तो यह विस्तृत है (पप्रथान), दूसरे यह अखंड (अदिति) है, और तीसरे सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला (कामदुध्) है। प्रजापति के सुंदर और सत्य नियमों के कारण इस पूर्ण पात्र में किसी प्रकार की कोई कमी उत्पन्न नहीं होती। यदि होती है तो प्रजापति के अखंड नियम उस न्यूनता की पूर्ति करते हैं[8]। सृष्टि का जो ऋत या दुर्धर्ष व्यवस्थापक नियम है वही सब प्रकार की त्रुटियों को पिटाता हुआ अंततः पृथ्वी को धारण करता है।

हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक बहुत बड़ा सत्य इस सूक्त में सच्चाई के साथ स्वीकार किया जाता है; वह यह है कि भाषा, जन और धर्म की दृष्टि से हमारी अनेक विभिन्नताएँ हैं–

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं
नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्॥(45)

यहाँ पर अनेक प्रकार के जन रहते हैं। उनकी भाषाएँ विविध प्रकार की हैं। अपने-अपने प्रदेशों के अनुसार वे नाना धर्मों के माननेवाले हैं, किंतु इस प्रकार की विभिन्नता को जो प्रकृति की ओर से हमें मिली है जन सहर्ष स्वीकार करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है और इस कठिनाई को अपनी बुद्धि से जीतता है। विभिन्न होते हुए भी प्रजाओं में समग्रता या एकता का भाव मन के ऊँचे धरातल पर विद्यमान है–

ता नः प्रजाः बहुतां समग्रा
वाचो मधु पृथिवी धेहि मह्यम्॥(16)

विश्व के इतिहास में विभिन्न सामग्री को एक में ढाल कर ऐक्य-संपादन का इतना विशाल और सफल प्रयोग किसी दूसरे देश में नहीं हुआ जैसा आज तक भारतवर्ष में होता रहा है। अनेक संस्कृतियों के आदान-प्रदान से समन्वय-प्रधान भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। यहाँ लोगों की दृष्टि में इस प्रकार का ऐक्य भाव सर्वोपरि था जिसमें प्रत्येक समुदाय को बिना उखाड़े या नष्ट किए हुए, समग्र शरीर का राष्ट्रीय अंग मानकर स्वयं विकसित होने के लिए स्वतंत्र रहने दिया गया हो। एक ही मातृभूमि पर बसने के कारण एकता का भाव शनैःशनैः भिन्न-भिन्न जनों के ऊपर भी अपना असर डालने लगता है। एकता की यह प्रक्रिया दो प्रकार से अपना प्रभाव दिखाती है, एक स्थूल जीवन में, दूसरे विचारों के धरातल पर। पहले प्रकार की एकता का वर्णन पृथ्वी की गंध के रूप में और दूसरी का पृथ्वी से उत्पन्न होने वाली अग्नि के रूप में किया गया है।

हमारी मातृभूमि की गंध विशेष प्रकार रखती है। पृथ्वी से उत्पन्न इस गंध का नाम ही राष्ट्रीय विशेषता है। जिनका जन्म भारतीय भूमि में हुआ है उनमें भारत की गंध बसी हुई है। वृक्ष, वनस्पति, पशु, पक्षी, मनुष्य और संस्थाएँ, भाषा और विचार, सभी पर यह नियम लागू है। सब अपनी भूमि की गंध से सुवासित हैं। स्त्री और पुरुषों में वही गंध प्रकट होती है। मातृभूमि की वह छाप प्रत्येक व्यक्ति अपने मस्तक पर धारण करता है। स्थूल रूप में भी हम सब अपनी-अपनी मातृभमि के अंग हैं और यह असंभव है कि हम उस गंध को हटा सकें। हम जहाँ भी होंगे उस गंध से पहचाने जाएंगे। यह गंध आज कोई नई बात नहीं है। पूर्व समय में पृथ्वी के साथ ही यह गंध भी प्रकट हुई थी। जल और ओषधियों में भी यही बसी हुई है। गंधर्व और अप्सराओं ने इसी गंध को अपने शरीर में धारण किया। भूमि की विशेषता की यह छाप मनु के समय से आज तक सदा देखी गई है। मातृभूमि की जो गंध पूर्व युग में थी वही आज है। मातृभूमि की जो 'अग्रगंध' राष्ट्रीय उदय के प्रथम प्रभात में देवों को मिली थी, जिसे सूर्या के विवाह में एकत्र हुए अतिथियों ने कमल रूप में सूंघा था, आज भी हमारे सामने जो कमल खिलते हैं उनमें वही गंध है। सचमुच भूमि और राष्ट्र के विकास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का प्रवाह एक और अखंड है। युवतियों के रूप में, पुरुषों की वीरता में, अश्व, मृग और हाथियों में उसी अग्रगंध की शोभा आज तक विद्यमान है[9]।

जन की एकता का दूसरा रूप मानस जगत् की भावना है। भावना ज्ञान का प्रकाश या ज्योति है। ज्योति का वैदिक चिह्न अग्नि है, इसीलिए कवि उस मनोमय प्रकाश को सब में व्याप्त समझ कर कहता है—'पुरुषों और स्त्रियों में, अश्व और गोधन में, द्युलोक और अंतिरक्ष में, जल और ओषधियों में, भूमि और चट्टानों में एक अग्नि बसी हुई है'। इस अग्नि को प्रज्वलित करना एक युक्ति है। जिस समय यह अग्नि जनता के मन में धधकने लगती है, मरणधर्मा मनुष्य भी अमर्त्य बन जाता है। वस्तुतः भावना की अग्नि ही देवता है, उसके द्वारा मातृभूमि के पुत्र अमृतत्व या देवत्व का भाव प्राप्त करते हैं। कवि की दृष्टि में भूमि अग्नि का वस्त्र ओढ़े हुए है (अग्निवासाः पृथ्वी, 21)। पृथ्वी मां का घुटना काला है (असितज्ञु, 21)। यह सत्य है कि पुत्र मां के जिस घुटने पर बैठता है उसका भौतिक रूप काला या प्रकाश रहित है। हममें से प्रत्येक मां के उस घुटने पर बैठा हुआ है। जब हम माता-पिता के संबंध का स्मरण कर मातृमान् बनते हैं और अपने हृदय के भावों से उस आग को जलाते हैं जो भूमि में व्याप्त है और मातृभूमि ने जिस अग्नि का सुनहला वस्त्र पहन रखा है, तो वह घुटना या माता की वह गोद चमकने लगती है। हम स्वयं उस तेज से प्रकाशित और तीक्ष्ण बन जाते हैं[10]। भूमि से ही प्राण की धाराएँ प्रवाहित होती हैं। कोई व्यक्ति, जन समुदाय या जाति जब तक भूमि के साथ संबंधित नहीं होती वह निष्प्राण रहती है। मातृभूमि का दिव्य रूप अनेक राष्ट्र वेगों का स्रोत है (सा नो भूमिः प्राणं आयुर्दधातु)। मातृभूमि के सब पुत्र एक से नहीं होते। कुछ में देश-प्रेम की उत्कट भावना प्रबुद्ध हो जाती है, शेष साधारण जीवन व्यतीत करते हैं। जिनमें प्राण और भावना है वे दैवी गुणों से युक्त है। उन देवों के लिये पृथ्वी पर यज्ञ सजाए जाते हैं। जो केवल मानुषी भावों से प्रेरित हैं उनके लिए अन्न और पान के सामान्य भोग हैं। (22)।

भूमि पर अच्छे बुरे दोनों तरह के लोग रहते हैं। वह माता दोनों का पोषण करती है— ज्ञानी गुरु और मूर्ख दोनों का भरण उससे होता है। भद्र और पापी दोनों की मृत्यु उसी की गोद में होती है (48)। सब दाहिनी-बाईं करवट से उसी पर लेटते हैं और वह सभी का बिछौना बनी है। (सर्वस्य प्रतिशीवरी, 24)। उसके जनायन मार्ग भले-बुरे सबके लिए बिछे हैं (47)। माता के रूप में वह क्षमाशील धात्री है, उसका नाम क्षमा है (क्षमां भूमिम् 29)। सहिष्णुता का सबसे बड़ा आदर्श वह स्वयं है। भूमि सबसे महती शोधक-शक्ति (विमृग्वरी, 35) है। जिनके हृदय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में राष्ट्र के प्रति मैल है वे जब भूमि की शरण में जाते हैं तो उनकी मलिनता धुल जाती है।

जन और व्यक्ति के पारस्परिक संबंध की एक विशेषता यह है कि जन समष्टि का रूप है और अमर है, एवं व्यक्ति की आयु परिमित है। व्यक्ति का जीवन एक पीढ़ी में समाप्त हो जाता है, जन युगांतर तक स्थिर रहता है। इसलिए भी हमारे सब कर्मों का उद्दिष्ट फल जन के लिए होना चाहिए। अंततोगत्वा जन के फलने-फूलने से व्यक्ति भी बढ़ते हैं। जन से अलग व्यक्ति के जीवन की कल्पना असंभव है।

भूमि के साथ जन का संबंध आज नया नहीं है। यह पृथ्वी हमारे पूर्व-पुरुषों की भी जननी है। इसकी गोद में जन्म लेकर पूर्वजनों ने अनेक विक्रम के कार्य किए—

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे। (5)

उन पराक्रमों की कथा ही हमारे जन का इतिहास है। पूर्व पुरुषों ने इस भूमि को शत्रुओं से रहित (अनमित्र, असपत्न) बनाया। उन्होंने युद्धों में दुंदुभिघोष किया (यस्यां वदति दुंदुभिः, 41) और आनंद से विजयगान करते हुए नृत्य और संगीत के उत्सव किए (यस्यां नृत्यंति गायंति ब्यैलबाः, 49) जनता की हर्ष-वाणी और किलकारियों से युक्त गीत और नृत्य के दृश्य एवं अनेक प्रकार के पर्व और मंगलोत्सवों का विधान संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसके द्वारा जनता में एकता उत्पन्न होती है। यहाँ असुरों और देवों की भिड़ंत पहले भी हुई है, पर देवों की विजय राष्ट्रीय-विजय है। आज तक जनता के मन में यही आदर्श जीवित है और भविष्य में भी रहेगा।

इस पृथ्वी के पुत्रों को विश्वकर्मा कहा गया है। (यस्यां यज्ञं तंवते विश्वकर्माणः, 13)। अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों की योजना उन्होंने की है और आज भी वे नए-नए आयोजन उठाते रहते हैं। पृथ्वी के विशाल खेतों में उनके दिन-रात के परिश्रम से चारों ओर धान्य-संपत्ति लहलहाती है। बुद्धि और श्रम से उन्होंने अनेक नगरों का निर्माण किया है जो देव-निर्मित-से जान पड़ते हैं। संस्कृति के अनेक अध्यायों का निर्माण नगरों में हुआ है। पृथ्वी पर जो ग्राम और अरण्य हैं उनमें सभ्यता के अंकुर फूले-फले हैं।

संस्कृति

भूमि राष्ट्र का शरीर है, जन उसका प्राण है और जन की संस्कृति राष्ट्र का मन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। भूमि, जन और संस्कृति तीनों के सुंदर-सम्मिलन और उन्नति से ही राष्ट्र की आत्मा का निर्माण होता है। भूमि और जन के अभ्युदय का अन्तिम लक्ष्य उत्तम संस्कृति ही है। राष्ट्र में सोने के सुमेरू पर्वतों का संचय उसके स्थूलरूप की सजावट है, किंतु ज्ञान, संकल्प और साधना के द्वारा राष्ट्र के मन का विकास होता है। पृथ्वी पर मनुष्य दो प्रकार से अपने आपको प्रतिष्ठित करता है—एकक्षत्र विजय या सैनिक बल द्वारा और दूसरे ब्रह्म विजय या ज्ञान बल द्वारा। क्षत्र-विजय (पोलिटिकल एंपायर) महान् पराक्रम का कार्य है, किंतु ब्रह्म-विजय (कल्चर एंपायर) उससे भी महान् है। क्षत्र-विजय का इतिहास जन के लिए गौरव-पूर्ण होता है, किंतु भूमि की धर्म विजय चारों ओर शांति और सुख का वितरण करती है। जैसा कहा है—यह पृथ्वी ब्रह्म या ज्ञान के द्वारा संवर्धित होती है।

ब्रह्मणा वावृधाना (29)।

ब्रह्म-विजय के क्षेत्र में एक व्यक्ति भी ज्ञान और कर्म की पूरी ऊँचाई तक उठकर दिग्विजय का आदर्श स्थापति कर सकता है। एक छोटा जनपद भी ज्ञान की विजय द्वारा विश्व में प्रसिद्ध हो जाता है। व्यक्तियों और जनपदों द्वारा भारतवर्ष की सांस्कृतिक विजय समस्त देश में व्याप्त हुई। एक-एक गाँव, नदी, पर्वत और जंगल को व्याप्त करती हुई यह संस्कृति देशांतरों और दीपांतरो तक पहुँची। दर्शन, धर्म, साहित्य और कला के रूप में भारतवर्ष की ब्रह्म विजय को संसार के कितने ही देशों में मान्यता प्राप्त हुई जिसके अनेक प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं। भारत के पड़ोसी देशों की संस्कृति इसकी साक्षी है। वृहत्तर भारत का अध्ययन भारतीय चातुर्दिश ब्रह्म-विजय के गौरवपूर्ण अध्यायों से हमारा परिचय कराता है।

इस ब्रह्म-विजय या सांस्कृतिक राज्य का रहस्य क्या है? आध्यात्मिक जीवन के जो महान तत्व हैं वे ही संस्कृति के आधार हैं। यह पृथ्वी उन्हीं पर टिकी है। सूक्त के पहले ही मंत्र में राष्ट्र की इस आधार-शिला का उल्लेख है—

सत्यं बृहद्दत मुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवि धारयन्ति है।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्नी उरुं लोकं पृथिवि नः कृणोतु॥

सत्य, महान् और कठोर ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ इस पृथ्वी को धारण करते हैं। जो पृथ्वी हमारे भूत और भविष्य की अधिष्ठात्री है वह हमें विस्तृत लोक प्रदान करने वाली हो।

ज्ञात होता है कि आरंभ में ही सांस्कृतिक विजय के तीन तत्व स्पष्ट समझ लिए गए थे। वे तीन बात ये हैं। सत्य, ऋत आदि नियम, जिस प्रकार आध्यात्मिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन के आधार हैं उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन के भी मूलाधार हैं। वे ही संस्कृति के मूलाधार हैं। दूसरी बात यह है कि भूतकाल में और भविष्य में राष्ट्र और पृथ्वी का जो पारस्परिक संबंध है वह संस्कृति के द्वारा ही स्थिर रहता है। संस्कृति के लोप से ही राष्ट्र और भूमि का भी लोप हो जाता है। तीसरा तत्व यह है कि ब्रह्म-विजय के मार्ग में पृथ्वी की दिकसीमाएँ अनंत हो जाती हैं। एक जनपद से जो संस्कृति की विजय उठती है उसकी तरंगें देश में फैलती हैं और पुनः देश से बाहर समुद्र और पर्वतों को लाँघती हुई देशांतरों में और समस्त भूमंडल में फैल जाती हैं। यही पृथ्वी द्वारा उरु-लोक प्रदान करना है। इस अर्थ में प्रत्येक देश की भूमि अपने जन को दूसरों के साथ अविरोध स्थिति द्वारा उरुलोक प्रदान कर सकती है।

सत्य और ऋत जीवन के दो बड़े आधार स्तंभ हैं। कर्म के सत्य का नाम सत्य है और मन के या विचारों के सत्य का नाम ऋत है। कर्म सत्य और मानस सत्य इनके सम्मिलित बल से राष्ट्र बलवान् होता है। इन दो प्रकार के सत्यों को प्राप्त करने के लिए जीवन के कटिबद्ध व्रत का नाम दीक्षा है। दीक्षित व्यक्ति सत्य के साथ आँख से आँख मिलाकर देखता है। दीक्षा के अनंतर जीवन में जो साधना की जाती है वही तप है। तप के फल का विश्व-हित के लिए विसर्जन यज्ञ है। उन पाँचों को प्राप्त करने की बुद्धि या भावना ही ब्रह्म या ज्ञान है।

मातृभूमि का स्थूल रूप पत्थर चट्टान और मिट्टी का एक जमघट है, किंतु इस मातृभूमि के पास एक हृदय है। जो ध्यान की शक्ति से देखते हैं उन्हें इस हृदय का परिचय होता है। केवल मन की शक्ति से मातृभूमि के हृदय के निकट पहुँचा जा सकता है। ऋषि के शब्दों में मातृभूमि का हृदय सत्य से घिरा हुआ है और वह अमर है। उस हृदय का निवास किसी शिला या भूमि में नहीं है। वह परम व्योम या भावनाओं के महान् आकाश में है। कहा गया है कि पहले यह पृथ्वी जल के भीतर छिपी हुई थी, पूर्व मनीषी अपने ध्यान की शक्ति से इसके पीछे चले तब यह उनके लिए प्रकट हुई। ऐसी यह भूमि उत्तम राष्ट्र में हमें तेज और बल प्रदान करने वाली हो।[11] यह अत्यंत काव्यमय कल्पना है कि आरंभ में यह पृथ्वी समुद्र के नीचे छिपी थी। उस समय विश्वकर्मा ने अपनी हवि डाली। ब्रह्मा की सृष्टि में जितने पदार्थ हैं वे सब विश्वकर्मा की हवि में सम्मिलित हैं। इस मातृभूमि के पास भोगों से भरा हुआ एक पात्र है, वह पहले अदृश्य था। जो मातृमान् हैं वह केवल उनके लिए प्रकट होता है (भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदा विभोंगेऽभवन्मातृवद्मयः 60) वस्तुतः माता का स्तन पुत्र के लिए भुजिष्य पात्र है। जन्म से पहले वह पात्र गुहानिहित रहता है, पर जन्म लेते ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मातृमान् पुत्रों के लिए उस पात्र में क्षीर प्रकट हो जाता है। इसी उपमा के अनुसार ऋषि की कल्पना है कि राष्ट्र में जितने जन हैं वे अपनी पृथ्वीपुत्र भावना के आधार पर ही भूमि से प्राप्त होने वाले भोगों के अधिकारी बनते हैं। जो मातृमान् नहीं है, मातृभूमि को अपनी माता नहीं समझता, जिसमें पृथ्वीपुत्र भावना का अभाव है, ऐसे व्यक्ति जन या समुदाय को राष्ट्र से मिलने वाले लाभ और भोगों पर कोई नैतिक अधिकार नहीं। माता और पुत्र, पृथ्वी और जन दोनों की वृद्धि साथ-साथ होती है (सानो भूमिर्वर्धयद् वर्धमान, 130)।

कवि की दृष्टि में यह भूमि सब भुवनों में अग्रणी है, इसी कारण ऋषि ने उसे 'अग्रेत्वरी' (आगे जाने वाली)[12] कहा है। इस नेतृत्व-पद के पीछे सहस्त्रों वर्षों की साधना और कर्मशक्ति छिपी हुई थी। जो भूमि स्वयं अग्रणी है वही अपने पुत्रों को प्रतिष्ठा और सम्मान का स्थान प्राप्त करा सकती है (पूर्वपेये दधातु)।[13] राष्ट्र की इस उत्तम स्थिति के व्यवहार सूत्र इस प्रकार कहे गए हैं–

1. "मैं जो कहता हूँ उसमें शहद की मिठास घोलकर बोलता हूँ।"
2. 'जिस आँख में मैं देखता हूँ उसे सब चाहते हैं।' हमारा दृष्टि-कोण विश्व का दृष्टिकोण है अतएव सबके साथ उसका समन्वय है; किसी के साथ उनमें विरोध या अनहित का भाव नहीं है।
3. 'परंतु मेरे भीतर तेज (त्विपि) और शक्ति (जूति) है।' हमारा व्यवहार और स्थान वैसा ही है जैसा तेजस्वी और सशक्त का होता है।
4. 'जो मेरा हिंसन या आक्रमण (अवरोधन) करता है उसका मैं हनन करता हूँ' इस नीति में राष्ट्र के ब्रह्मबल और क्षत्रबल का समन्वय है।

इस भूमि की अंतरात्मा अध्यात्म भावों के साथ मिली हुई है (संविदाना दिवा 60)। धर्म के नियम इसे धारण कर रहे हैं (धर्मणा धृता, 17)। जीवन और सृष्टि को धारण करने वाले नियमों की संज्ञा धर्म है। मतमतांतरों का नाम धर्म नहीं, किंतु सत्य का ही पर्याय धर्म है। इस भूमि में आरंभ से ही सर्वसम्मति से धर्म के कल्पवृक्ष का रोपण किया गया। इसके पुत्रों ने जान-बूझकर इंद्र का वरण किया, वृत्रासुर का नहीं (**इंद्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्, 37**)।

इस प्रकार संस्कृति के उषःकाल में ही मातृभूमि के आदर्श स्वरूप की कल्पना की गई। इस आदर्श की एकता में ही राष्ट्र की वास्तविक एकता है। जैसे घोड़ा अपने शरीर से धूल झाड़ता है उसी प्रकार इस पृथ्वी पर जन चारों ओर फैल गए (57) और सब यथास्थान बस गए। ये सब घटनाएँ अपेक्षाकृत गौण हैं, किंतु मातृभूमि के इस आदर्श-स्वरूप का अस्तित्व, उसकी मान्यता और भक्ति यही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जन की समग्रता और एकता करने वाला अंतर्यामी सूत्र है। जो इस सत्य के आदर्श को मानते हैं वे ही मातृभूमि के सच्चे पृथ्वीपुत्र हैं।

संदर्भ

1. कोष्ठक के अंक सूक्त के मंत्रों के सूचक हैं।
2. यास्ते प्राची प्रदिशा या उदीचीः...
   स्योनास्ता मह्यं चरते भवंतु।
3. शिला भूमि रश्मा पांसु : सा भूमि : संधृता धृता।
   तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः। (26)
4. यस्यां वातो मातरिश्वा ईयते
   रजांसि कृण्दन् च्यावयंश्च वृक्षान्।
5. यस्यां आपः परिचयाः समानीरहोरात्रे अप्रपादं क्षरन्ति। (9)
6. विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा
   हिरण्वक्षा जगतो निवेशनी।
   वैश्वानरं बिभ्रती भूमि रग्निं,
   इन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु। (6)
   निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु
   मणिं हिरण्यं पृथिवि दवातु मे।
   वसूनि नो वसुदा रासमाना,
   देवी दधातु सुमनस्यमाना॥ (44)
7. भूप्रतिष्ठा, भूमापन, प्रारंभिक युग में भूमि पर जन के सन्निवेश की संज्ञा है जिसे अंग्रेजी में लैंड किंग कहा जाता है। आइसलैंड की भाषा के अनुसार लैंड टेकिंग के लिए 'लैंड नामा, 'शब्द है। डॉ. कुमारस्वामी ने ऋग्वेद को 'लैंडनाना बुक' कहा है, क्योंकि ऋग्वेद प्रत्येक क्षेत्र में आर्य जाति की भू प्रतिष्ठा का ग्रंथ है। पूर्व जनों के द्वारा भूप्रतिष्ठा (पृथ्वी पर पैर टेकना) सव देशों में एक पवित्र घटना मानी जाती है (देखिए कुमारस्वामी, ऋग्वेद ऐज़ लैंड नामा बुक, पृष्ठ 34)।
8. यते ऊनं तते आपूरयति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य। (61)
9. यस्ते गंधः पृथिवि संवभूव यं विभ्रप्रत्योषधयो यमापः।
   मानो द्विक्षत कश्चन॥
10. अग्निवासाः पृथ्व्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं माकृणोतु। (21) यं गंधर्वा अप्सरश्च भेजिरे
    तेन मा सुरभिं कृणु
    यस्ते गन्धः पुष्कर माविवेश
    यं संजभ्रुः सूर्याषा विवाहे।
    अमर्त्याः प्रथिवि
    तेन मा सुरभिं कुणु मा नो द्विक्षत कश्चन॥
    यस्ते गंधाः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेधूत हस्तिषुग।
कन्यायां वर्चो यद्भूमे तेनास्मां अपि संसृज
मा नो द्विक्षत कश्चन॥ (अथर्व. 12/1/23-24)

11. यार्णवेऽधि सलिल मग्र आसीद्यां मायाभिरंववचरंमनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्र दधातत्तमे॥ (7)

12. भूवनस्य अग्रेत्वरी (अग्र+इत्वरी) लीडर आव आल दी वर्ल्ड (पिफिथ अथर्व. 12/1/47)।

13. पूर्वपेय-फोरमोस्ट रैंक एंड स्टेशन, ग्रिफिय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-5

तीर्थ और पुण्य-क्षेत्र

जन का मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम तीर्थों की कल्पना के रूप में प्रकट हुआ। तीर्थ भूमि पर फैलते हुए जन सन्निवेश के नए-नए केंद्र थे। ऊपर कहा गया है कि यज्ञों का सिलसिला नदियों के किनारे आगे बढ़ा। अग्नि की नई-नई वेदियाँ नए सन्निवेशों के रूप में स्थापित होने लगीं। वे ही तीर्थों के रूप में जन के लिए नए निवास केंद्र बने। फैलते हुए जन ने प्रत्येक भू-भाग के साथ स्व या अपनेपन का संबंध स्थापित किया। इस संबंध को बनाने की सबसे प्रभावशाली युक्ति भूमि को देवत्व प्रदान करना है। जिस भू प्रदेश को हम देवता मान लेते हैं उसका अस्तित्व और आकर्षक अमर हो ज़ाता है। नदियों, पर्वतों और जंगलों से भरे हुए विशाल देश में भूमि के साथ आत्मीयता स्थापित करने के लिए सबसे सुंदर और स्थायी युक्ति तीर्थ निर्माण के रूप में स्वीकृत हुई। प्रत्येक नदी, जलधारा, झरना, कुंड, जलाशय और पर्वत का नामकरण करना और उसके साथ किसी-न-किसी देवता, पूर्वज, ऋषि एवं तपस्वी का संबंध जोड़ना यह तीर्थ निर्माण का आवश्यक अंग है। इस प्रकार जो स्थान देवत्व प्राप्त कर लेते हैं वे जन की भावनाओं के साथ अंतरंग रूप से जुड़ जाते हैं। उन तीर्थों की सर्वमान्यता के द्वारा जन में परस्पर ऐक्य का प्रसार होता है। उदाहरण के लिए, हिमालय में भारतीय तीर्थस्थानों के महत्त्वपूर्ण गुच्छे हैं। हिमालय केवल पत्थर-मिट्टी का ढेर नहीं है, वह लता वनस्पति, ओषधि, पुष्प और रत्नों का निरा उत्पत्ति स्थान नहीं है। हिमालय का सच्चा स्वरूप कवि के शब्दों में देवतात्मा है, उसके प्रदेश देवभूमियाँ हैं (कालिदास)[1]। हिमालय के देवता होने की यह भावना समस्त राष्ट्र में व्याप्त हो गई। देश का कोई भाग ऐसा नहीं बचा जहाँ कि जनता ने हिमालय संबंधी इस दृष्टिकोण को न अपना लिया हो। इस विश्वास के सर्वत्र मान्य होने के कारण पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण से सब लोग हिमालय दर्शन के लिए आने लगे और और आज भी उस अभिलाषा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से आते हैं। हिमालय के संबंध में यह संस्कार बचपन से ही प्रत्येक भारतीय के मन में दृढ़ हो जाता है। हिमालय का यह देवत्व कोरी कवि-कल्पना भी नहीं है। जिस पर्वतराज के उच्च शिखरों की हिमराशि मातृभूमि का सुंदर मुकुट है, जो हमारे मेघजल, वर्षा-संस्थान और ऋतुचक्र के क्रम को चलाता है। जिसने अपनी नदियों द्वारा करोड़ों वर्षों के निरंतर श्रम से हमारे लिए पवित्र, विस्तृत और सुंदर मातृभूमि का निर्माण किया है, उस हिमालय का देवत्व स्वयं सिद्ध है। उसके उपकार से भारतीय मानव का मन अचंभे में आ जाता है। मातृभूमि के लिए हिमालय के अनुग्रह अनेक प्रकार के हैं। हमारे पूर्वजों ने हिमालय के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किया। उसके दिव्य रूप के दर्शन के लिए वे यात्रा दल बना कर निकले और हिमालय के अंतर में बैठ कर उसके स्वरूप का अंतरंग परिचय प्राप्त किया। हिमालय के भूगोल का निर्माण शतप्रतिशत भारत राष्ट्र की देन है। हिमालय की जो तीन लंबी वाहियाँ एक दूसरे के समानांतर पूर्व-पश्चिम चली गई हैं उन्हें भी प्राचीन भारतीयों ने अपनी पैनी आँख से पहचान लिया था। उनके नाम वहिर्गिरि, उपगिरि और अंतर्गिरि हैं (सभा. 27/3) बहिर्गिरि में शिवालक तराई भाभर के जंगल हैं। वनस्पति और जंतुओं की विविधता में संसार का कोई हिस्सा शिवालक और उसकी दूनों का मुकाबला नहीं कर सकता। इससे ऊपर चार हजार से आठ-नौ हजार की फुट की ऊँचाई तक हिमालय की उपरिगि नाम की शृंखला है जिसे पाली में 'चुल्लहिमवंत' (अं. लैसर हिमालय) कहा गया है। कश्मीर, चंबा, कांगड़ा, शिमला, गढ़वाल, कुमाऊँ आदि की प्रसिद्ध और मुख्य बस्तियाँ इसी में हैं, जैसे नैनीताल, मसूरी, शिमला आदि। हिमालय का अंतर्गिरि भाग उसकी गर्भ शृंखला के ऊँचे पहाड़ों में है, जिसे पाली साहित्य में 'महाहिमवंत' (अं. ग्रेट सेंट्रल हिमालय) कहा गया है। नंगा पर्वत, बंदरपूँछ (यामुनपर्वत), केदारनाथ, बद्रीनाथ, नंदादेवी, धवलगिरि, गोसाई थान, गौरीशंकर आदि 18-20 हजार फुट और उससे अधिक ऊँची चोटियाँ इसी में हैं जिन पर सदा बर्फ जमी रहती है[2]। हिमालय की ये तीन शृंखला इस पहाड़ पर चढ़ने की मानो तीन सीढ़ियाँ है जिसमें से पहली सीढ़ी 'हर की पैड़ी' के रूप में गंगाद्वार या हरिद्वार में शुरू होती है।

हिमालय को देवस्थान बनाने के लिए सबसे पहला प्रयत्न नामकरण के रूप में प्रकट हुआ। भौगोलिक नाम पुरातत्व के स्मारकों से भी अधिक स्थायी होते हैं। इस विषय में हिमालय के भूगोल का अध्ययन करने वाले बुरर्ड और हेडन नामक विद्वानों ने उसके सुंदर काव्यमय नामकरण से प्रभावित होकर इस प्रकार लिखा—'प्राचीन नाम अपने संगीत और ताल से हमें प्रभावित करते हैं। हिमालय और कैलास जैसे नाम प्राचीन स्मारक हैं, जिनकी तुलना अशोक के स्तंभों से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही जा सकती है। गंगोत्री और बद्रीनाथ जैसे नाम उन आर्य यात्रियों के साहस और उद्योग की याद दिलाते हैं जो हिमालय के जोते घाटे और दरी द्रोणियों में घुस जाने वाले पहले घुमक्कड़ थे। हिमालय पर गंगा की द्रोणी में नदी धाराओं, देवस्थानों, चोटियों और बस्तियों के नाम संस्कृति भाषा के सौंदर्य के अनुपम उदारहण हैं[3]।' और भी, 'हिमालय में गंगा की द्रोणी की भौगोलिक छान-बीन ईसा से सैकड़ों वर्ष पहले आर्य लोग कर चुके थे। उन्होंने नदी का नाम गंगा रखा और उसे हिमवंत की पुत्री कहा। हिमालय में गंगा की दो शाखा नदियों को उन्होंने अलकनंदा और भागीरथी नाम दिया, पिछला नाम राजा भागीरथ से पड़ा है। रामायण में गंगा को समुद्रपत्नी कहते हुए अत्यंत पवित्र और पापहारिणी कहा गया है। आज गंगा भारतवर्ष की सबसे पवित्र नदी है। हिमालय के भी किसी अन्य प्रदेश में भौगोलिक नामों का ऐसा काव्यमय सिलसिला नहीं मिलता जैसा गंगा से युक्त हिमालय के प्रदेश में; और न संसार में अन्यत्र कहीं भौगोलिक नामों की इतनी मूल्यवान और प्राचीन निधि पाई जाती है। ये नाम प्राचीन भारतीय भूगोल शास्त्रियों की कला के अद्‌भुत नमूने हैं; अर्वाचीन भूगोल न केवल इनकी प्रशंसा करता है बल्कि इनसे ईर्ष्या भी' (वही, भाग 3, पृ. 80)। जैसा हम भूमि परिचय नामक अध्याय में बता चुके हैं अलकनंदा, भागीरथी, मंदाकिनी, जाह्नवी, इन चार मुख्य धाराओं के सम्मिलिन से गंगा बनी हैं। इनके अतिरिक्त विष्णु गंगा, विरहीगंगा, वसुगंगा, क्षीरगंगा आदि अन्य कितने ही नाम इस भौगोलिक काव्य के सुंदर पद हैं। संस्कृत नामों का यह अध्याय देश के प्रत्येक भू-भाग में फैला हुआ है। स्वयं हिमालय से मैदानों की ओर बहकर आनेवाली नदियों के नाम कितने सुंदर हैं? सरयू, इरावती (सदानीरा), कौशिकी, वाग्मती, विष्णुमती, अरुणा, ताम्रा, त्रिस्रोतसा, करतोयया, ब्रह्मपुत्र आदि नाम अतीव सुंदर हैं।

इन नामों पर संस्कृत भाषा की छाप है। आर्य जाति ने जिस प्रकार शनैः शनैः समस्त देश को अपने उपनिवेश चक्र के अंतर्गत सम्मिलित किया उस दीर्घकालीन श्रृंखला की कड़ियाँ इन नामों में मिलती हैं। नामों के रूप में भूमि पर मानो जन की भाषा और भावों की अमिट छाप लगी हुई है।

भौगोलिक नामकरण के पीछे यह तत्व छिपा हुआ है कि प्रत्येक स्थान के साथ जन के इतिहास का अभिन्न संबंध है। अवश्य ही जिस समय भारतीय मनुष्य इस भूमि पर फैले और उन्होंने इस पर अधिकार किया उनके पराक्रम का इतिहास और उनके पथिकृत् नेताओं के चरित्र और नाम भूमि के साथ संबंधित हो गए। वसिष्ठ, विश्वामित्र, भृगु, कण्व, अगस्त्य आदि अनेक ऋषियों के नामों से स्थानों का नामकरण किया गया। नामकरण से भी अधिक महत्त्वपूर्ण वे स्थल माहात्म्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं जो भिन्न-भिन्न स्थानों के लिए बनाए गए। भूमि को देवत्व प्रदान करने की पूरी युक्ति इन माहात्म्यों में है। हम उस पूर्व युग की कल्पना कर सकते हैं जब जनता के बढ़ते हुए रथ का पहिया किसी सरोवर या नदी के तट पर रुका होगा। पथिकृत् पूर्व पुरुषों ने श्रद्धा से मातृ-भूमि के उस भाग को प्रणाम किया होगा। वहाँ उन्होंने यज्ञ किए, वेदियाँ और यूप स्थाति किए, किसी देवता का संबंध स्थापित किया, किसी ऋषि या महापुरुष के चरित्र की लीलास्थली बनाई, अथवा किसी तपस्वी के तप के क्षेत्र के रूप में उसे देखा और उस विशेष भूमि की प्रशंसा में एक माहत्स्य रचा। इस प्रकार जिस तीर्थ का निर्माण हुआ उस समय वही केंद्र उनकी दृष्टि में महत्त्वपूर्ण था, मातृभूमि के गूढ़ हृदय को उसके रूप में वे प्रत्यक्ष देखते थे। इस प्रकार चारों दिशाओं में पवित्र तीर्थों का जाल बिछ गया।

ये तीर्थ स्थान किसी एक धर्म या संप्रदाय तक सीमित नहीं हैं। प्रत्येक मत और विश्वास के लोगों ने अपनी-अपनी दृष्टि से इन स्थानों की कल्पना की है। कभी-कभी एक ही पुण्य स्थल में कई धर्मों के अनुयायियों ने अपने केंद्र बनाए, और परस्पर के मिलने से जनता में एक दूसरे के देवताओं का आदान-प्रदान हुआ। ये स्थान महातीर्थ बने। जो केंद्र धर्म, विद्या, व्यापार और राजनीति इन चारों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण थे वे महापुरी के रूप में समस्त देश में मान्य समझे गए। स्कंदपुराण के काशीखंड में कहा है कि तीर्थों के दो भेद हैं, मानस तीर्थ और भौमतीर्थ। जिनके मन शुद्ध हैं, जो आचारवान ज्ञानी और तपस्वी हैं, ऐसे लोग मानसतीर्थ हैं। जितेन्द्रिय जहाँ रहते हैं वहीं वे तीर्थ बनाते हैं। भौमतीर्थ चार प्रकार के हैं, अर्थतीर्थ (नदियों के तट और संगम पर व्यापार केंद्र), धर्मतीर्थ (प्रजाओं के धर्मपालन के निमित पवित्र धर्मनीति के केंद्र), कामतीर्थ (कला और सौंदर्य साधना के केंद्र), एवं मोक्षतीर्थ (विद्या, ज्ञान और अध्यात्म के केंद्र)। जहाँ इन चारों का समवाय हो और जीवन की बहुमुखी प्रवृत्तियों के सूत्र मिलते हों, वे बड़े तीर्थ महापुरियों के रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं, जैसे काशी, प्रयाग, मथुरा, उज्जयिनी आदि। नगर निर्माण के लिए आवश्यक तत्वों का समावेश तीर्थों की रचना में भी पाया जाता है, किंतु जनता की दृष्टि से तीर्थों में एक अतिमानवी आध्यात्मिक आकर्षण था जिसके कारण लोग सांसारिक स्वार्थों से ऊपर उठकर तीर्थों की ओर आकृष्ट होते थे। तीर्थों के प्रति सामान्य जनता के दृष्टिकोण को महाभारतकार ने इस प्रकार व्यक्त किया है—'ऋषियों ने वेदों में बहुत से यज्ञ कहे हैं। उनका फल जीते जी और मर कर लोगों को मिलता है, लेकिन दरिद्र जनता को वह फल कैसे मिल सकता हैं? यज्ञों के लिए ठाट-बाट और सामग्री की आवश्यकता होती है। निर्धन लोग अकेले, बिना बहुत व्यय के यज्ञों का फल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पा सकें, इसकी युक्ति तीर्थ यात्रा है। वस्तुतः तीर्थों में जाने का पुण्य यज्ञों से भी अधिक है। 'जो पुण्य बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञों के करने से नहीं मिलता वह तीर्थ में जाने से मिलता है' (वन. 80/34/10)। इस प्रकार जनता को भी सांस्कृतिक आंदोलन में सम्मिलित करने के लिए तीर्थयात्रा बड़ी सहायक हुई। दूर बस्ती, जंगल और पहाड़ों में रहनेवाले लोग जो धर्म, संस्कृति,, विद्या और सदाचार की प्रवृत्तियों से अपरिचित रहते थे वे भी तीर्थयात्रा के निमित्त स्वेच्छा से तीर्थ केंद्रों में आते और उनके संस्कार ले जाते थे।

तीर्थ यात्रा मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम की सर्वथा अभिव्यक्ति है। यह देश पूजा की ऐसी विधि है जिससे धार्मिक भावों को बल मिलता है और साथ ही भौगोलिक चेतना बढ़ती है। तीर्थयात्रा से मिलने वाले पुण्य लाभ के पीछे और भी कितने ही लाभ छिपे हैं, जैसे स्थानों के प्राकृतिक सौंदर्य का परिचय, वहाँ के अद्भूत शिल्प, स्थापत्य, कला और देवमंदिरों के दर्शन से कलात्मक शिक्षण, एवं भूगोल का साक्षात् ज्ञान। मथुरा, काशी, कांची किसी समय कला के प्रसिद्ध केंद्र थे। लाखों मनुष्य उनकी वार्षिक यात्रा करते और उस अद्भुत कला सामग्री को अपनी आँखों से देखते थे। आज उस सामग्री के कुछ टूटे-फूटे भाग हमारे संग्रहालयों में रह गए हैं, किंतु वे जनता के जीवन का भाग नहीं बने हैं। तीर्थ कला के सार्वजनिक संग्रहालय थे जहाँ प्रतिवर्ष दर्शकों का तांता निश्चित था। काशी जैसे तीर्थों में विद्या की भी राजधानी थी। कितने ही तीर्थ-स्थान प्राकृतिक सौंदर्य के विलक्षण स्थल हैं। वस्तुतः हम अपनी नई आँख से भी प्रकृति-सौंदर्य का शायद ही कोई ऐसा स्थान ढूंढ सकें जिसे पहले से ही पहचान कर तीर्थ न बना लिया गया हो। पर्वतों की गुफाओं और नदियों के संगम की भारतीय मन के ऊपर पवित्र प्रतिक्रिया होती है। ऐसे स्थल मनुष्य के मन को प्रबुद्ध करते हैं। और उसे प्रकृति में निगूढ़ रहस्मयी शक्ति का चिंतन करने की ओर प्रवृत्त करते हैं—

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां। (ऋक्. 8/6/28)
धिया विप्रो अजायत। (यजु. 26/15)

पर्वतों की गोद में, नदियों के संगम पर, ज्ञानी की बुद्धि उत्पन्न होती है।

इस सत्य का अनुभव सभ्यता के उषःकाल ऋग्वेद के युग में ही कर लिया गया था जब आर्य लोग चारों दिशाओं में भूसन्निवेश के सूत्र छोड़ रहे थे। इसी नींव पर तीर्थों की कल्पना हुई। हम देखते हैं कि हिंदुओं की तीर्थयात्राएँ हिमाच्छादित पर्वत श्रृंगों और वृक्ष वनस्पतियों से भरे हुए हुए अरण्यों की ओर ले जाती हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहाँ मानवी संसर्ग से अकलुषित प्रकृति शांति, आनंद और प्राण की धाराएँ बहाती है। सुंदर स्थलों के विषय में भारत का यह दृष्टिकोण पश्चिम से भिन्न है एवं प्रकृति के स्वर में स्वर मिला कर आनंदोत्सव मनाने का ढंग भी अलग है। सुंदर स्थान मनुष्य में रंगरेलियों की चाह या भोग की भूख उत्पन्न नहीं करता; वह तो आत्मसंयम और एकांत चिंतन का स्थल है जो मनुष्य के मन को झटका देकर ऊपर उठाता है और प्रकृति के अधिष्ठातृदेव के सान्निध्य में खींचता है। हिमालय में गंगा की उपरली धाराओं में मिलने से बने हुए अनेक प्रयाग इसके उदाहरण है। विष्णुप्रयाग[4], नंद्रपयाग[5], कर्णप्रयाग[6], रुद्रप्रया[7], देवप्रयाग[8],और गंगा द्वार[9] के तीर्थस्थान एक ओर प्रकृति के अमित शोभास्थल हैं, दूसरी ओर धार्मिक दृष्टि से उनकी स्थिति बहुत ऊँची है। कल्पना कीजिए अमरीका के न्यागरा प्रपात कहीं गंगा के प्रपात होते हो वहाँ उजानी (उद्यान भोजन) और मनचंगे उत्सवों के स्थान में तीर्थ यात्राओं के दृश्य होते, वाटिकाओं के स्थान पर आश्रम, और विश्रांति गृहों के स्थाना में मानवी कला के चमत्कारी प्रतीक देवालय होते ।

यहाँ के लोग प्रपात की शक्ति को स्थूल उपयोगिता के काम में न लगा कर वहाँ शरीर की सुध-बुध भुला देनेवाले चैतन्य के ध्यान में अपने आप को लीन करते[10]।

इस प्रकार प्राकृतिक स्थलों में तीर्थयात्रा ठेट भारतीय जीवन विधि है। बच्चे, बूढ़े, युवा, स्त्री, पुरुष सब इसमें भाग लेते हैं। भारतीय मानव के जीवन में इसका बहुत कुछ स्थान है। जब उपयुक्त समय आता है लाखों मनुष्यों के मन में हिलोर उठती है और वह देश के कोन-कोने से जनता को निकाल कर तीर्थ में एकत्र कर देती है। आज भी राष्ट्रीय जीवन की कोई दूसरी प्रेरणा इतनी बलवती नहीं है। कुंभ के अवसर पर लगभग दस लाख यात्रियों का समूह हिमवंत की पुत्री गंगा का अभिनन्दन करने के लिए हिमालय की गोद में भर जाता है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन निर्मल आकाश की छिटकती चाँदनी में लाखों व्यक्ति गंगा के किनारे एकत्र होकर सामूहिक स्नान करते हैं। प्रयाग में त्रिवेणी संगम, बद्रीनाथ, अमरनाथ, उज्जैन, गया, जगन्नाथपुरी, तिरुपति बालाजी, दक्षिण मदुरा, सेतुबंध, रामेश्वर, द्वारका—इसी प्रकार के देश प्रसिद्ध तीर्थ हैं जो प्रतिवर्ष धर्म के द्वारा देश दर्शन के लिए जनता का आवाहन करते हैं। तीर्थयात्रा देश-दर्शन का बहुत सुंदर साधन रहा है। पैदल यात्रा में लोगों को देश की तिल-तिल धरती के साथ परिचित होने का अवसर मिलता था। रेल की सुख सुविधओं से पहले अत्यंत कष्ट सहकर जनता देश भ्रमण की अपनी साध पूरी करती थी। तीर्थयात्रा के धरातल पर जनता की दृष्टि में सारा देश एक होता है। मन की उस पवित्र और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उच्च भूमिका में प्रत्येक व्यक्ति मातृभूमि के शरीर को एक समझकर दिशा और दूरी के व्यवधान से ऊपर उठकर देखना चाहता है। बलूचिस्तान में हिंगुलाज तीर्थ, कश्मीर में अमरनाथ, असम प्रदेश में कामाक्षा तीर्थ और दक्षिण दिशा में कुमारी तीर्थ, ये देश की चार खूटों के चार पवित्र स्थान हैं जहाँ सब ओर के लाखों यात्री प्रतिवर्ष जाकर दर्शन करते हैं और मार्ग में आनेवाले अनेक रमणीक स्थानों को देखते हुए जाते हैं। कभी-कभी गाँवों से सैकड़ों यात्रियों की टोलियाँ एक साथ उठती हैं। जैसे आजकल के घुमक्कड़ दल कंधे पर थेला डालकर निर्द्वंद मन से मुँह उठाए हुए केवल यात्रा का सुख लेने के लिए निकलते हैं, ऐसे ही पूर्वकाल में लोग कंधे पर कांवर उठाते थे। इन्हें 'कंवरतिए' कहते हैं। मातृभूमि की एकता के स्वप्न को ये स्थूल प्रतीक द्वारा पूरा करते हैं। हिमालय में गंगोत्री का पूजनीय जल लेकर वे पद संचार से गाँव-गाँव विचरते हुए समुद्र के छोर पर स्थित सेतुबंध रामेश्वर में शिव पर उसे चढ़ाते हैं। तीर्थयात्रा भारतीय गृहस्थ और साधु संप्रदाय दोनों में ही अत्यंत व्यापक मान्य और प्राचीन विधि है। सांस्कृतिक एकता को पोषित और संवर्धित करने में इसका बड़ा हाथ रहा है।

भारतवर्ष के तीर्थों का विवरण देश दर्शन के इस प्रभावशाली और व्यापक चित्र को बहुत अच्छे ढँग से हमारे सामने रखता है। इस मानचित्र का पहला सूत्र चार धाम की यात्रा है। ठेट देहात में भी हम चले जाएँ जहाँ लोगों का भौगोलिक ज्ञान बहुत ही सीमित है वहाँ भी चार धाम का नाम लोगों ने सुना होगा। जिनका भौगोलिक क्षितिज अपनी तहसील या जिले तक परिमित है वे भी उत्तर के बद्री-केदार, पूरब के पुरी जगन्नाथ, दक्षिण के सेतुबंध रामेश्वर और पश्चिम के द्वारका के नाम जानते हैं[11]। बहुत करके गाँव में ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे जो अपने जीवन में ही चार धाम की यात्रा पूरी कर चुके हों या जिनके किसी वृद्ध पूर्वज ने यह यात्रा की हो।

यों तो देश में अनेक नदियाँ पवित्र मानी गई हैं, किंतु सात नदियों की निगती भौगोलिक एकता की सूचक है। स्नान के समय यह श्लोक पढ़कर इन नदियों का आवाहन किया जाता है–

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु।

स्नान के घड़े भर जल में और गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी और सिंधु इन सात नदियों के पवित्र जलों में पारस्परिक एकता की भावना अत्यंत श्लाघनीय है। बड़े सरल और सीधे शब्दों में यह मातृभूमि के अखंड स्वरूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का दैनिक पारायण है। इसी प्रकार सप्तमहापुरियों की कल्पना भी देश के व्यापक मानचित्र का संक्षिप्त सूत्र है। अयोध्या, मथुरा, माया (मायापुर-हरिद्वार), काशी, कांचीपुरी, अवंतिका (उज्जैन), द्वारका, ये सात पुरी मोक्ष देने वाली हैं। इसमें भी उत्तर दक्षिण दोनों भाग पवित्र कहे गए हैं। पुराणों के अनुसार चार तीर्थ माने जाते हैं—पूर्व में श्वेतगंगा, दक्षिण में धनुषतीर्थ (समुद्र के किनारे धनुष्कोटि), पश्चिम में गोमतीकुंड (द्वारका में गोमती नदी) और उत्तर में तप्तकुंड[12]। इस प्रकार दक्षिणी समुद्रतट से उत्तराखंड के बद्रीनाथ तक और पश्चिमी समुद्र के गोमती तीर्थ या द्वारका तक देश का भौगोलिक रूप इन सूत्र में पिरोया गया है। पंपासर[13], बिंदुसर[14], नारायणसर[15], और मानसरोवर ये चार अत्यंत पवित्र सरोवर क्रमशः दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और उत्तर में स्थित हैं। इसी प्रकार चार प्रधान क्षेत्र कहे गए हैं—वराहक्षेत्र[16], कुरुक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र[17], औ मुक्तक्षेत्र[18]।

तीर्थ-परिक्रमा

तीर्थ यात्रा के प्रसंग से भूमि की परिक्रमा की जाती है। उसके जो प्रसिद्ध स्थल हैं उन्हें तीर्थयात्री एक क्रम के अनुसार देखता हुआ जाता है। इस प्रकार की चारों दिशाओं की यात्रा या परिक्रमा का दूसरा नाम प्रदक्षिणा है क्योंकि इसमें यात्री घड़ी की सुई की तरह सदा अपने हाथ की ओर घूमता है। महाभारत के एक अत्यन्त प्राचीन स्थल में इस प्रकार की तीर्थ परिक्रमाओं का वर्णन सुरिक्षित रहा गया है[19]।

कथा का प्रसंग इस प्रकार है—युधिष्ठिर भाइयों के साथ काम्यकवन में ठहरे हुए हैं। अर्जुन दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति के लिए तप करने चले जाते हैं। उनके विरह में सब भाई दुःखी हैं। ऐसे समय नारद युधिष्ठिर के पास आते हैं और उनके मन की ग्लानि को हटाने के लिए पुलस्त्य और भीष्म के संवाद रूप में भारतवर्ष के तीर्थों का वर्णन करते हैं (अ. 80—अ. 83)। इसके तुरंत बाद पांडवों के पुरोहित धौम्य आते हैं और पांडवों को दुःखी और अर्जुन के लिए उत्सुक देखकर उन्हें दिलासा देने के लिए वे भी एक तीर्थ परिक्रमा का वर्णन करते हैं (अ. 85—अं. 88) इस प्रकार ये दो वर्णन हमारे सामने हैं। इसमें से धौम्य की तीथयात्रा के चार अध्यायों में केवल 102 श्लोक हैं और पुलस्त्य के वर्णन में 598 श्लोक। इनमें धौम्य की यात्रा कहीं अधिक प्राचीन, संक्षिप्त और क्रमबद्ध है। धौम्य तीर्थ यात्रा पूर्व में गया और महेंद्र, पश्चिम में पुष्कर और द्वारका तक जाती है। पुलस्त्य की यात्रा का क्षेत्र पूर्व में कामरूप और पश्चिम में सिंधु सागर संगम तक है। दक्षिण की ओर दोनों का विस्तार कन्याकुमारी तक है।

इन दोनों तीर्थ यात्राओं को सुनने के बाद युधिष्ठिर लोमश ऋषि को पथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रदर्शक की तरह साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिए निकलते हैं। इसका वर्णन अनेक अवांतर कथाओं के साथ लगभग 60 अध्यायों में पाया जाता है।

देश की चारों दिशाओं का यथासंभव दर्शन इन तीनों के ही अंतर्गत आ जाता है और इनको पढ़ने से मन पर यह छाप पड़ती है कि बद्री केदार एवं कैलाश मानसरोवर से लेकर दक्षिण दिशा में कन्यकुमारी तक की भूमि एक भौगोलिक एवं धार्मिक संस्थान के अंतर्गत आ चुकी थी। ब्राह्मण ग्रंथों में समुद्र पर्यंत पृथ्वी के एक राष्ट्रशासन का जो उल्लेख है उसका आधार इन तीर्थ यात्राओं में वर्णित भौगोलिक स्थिति ही हो सकती है।

इस प्रसंग में एक बात उल्लेखनीय है। यात्रा पर चलने से पहले लोमश ने युधिष्ठिर को सलाह दी कि यात्रा पर बिना बोझ के हल्के होकर चलना चाहिए। जो हल्का है वह अपने मन की इच्छानुसार यात्रा कर सकता है—

गममे कृतबुद्धि तं पांडवं लोमशो ब्रवीत्।
लघुर्भव महाराज लघुः स्वैरं गमिष्यति॥

—(आरण्यक 90-18)

लोमश ने कहा मैं स्वयं दो बार तीर्थों को देख चुका हूँ, आपके साथ तीसरी बार फिर देखूँगा। पुण्यात्मा मनु आदि राजर्षि भी पहले इस तीर्थयात्रा पर जा चुके हैं[20]। तीर्थयात्रा मनुष्य के मन का डर हटा देती है। सच बात तो यही है कि यात्रा का यही बड़ा फल है। अपरिचित स्थानों और वहाँ के निवासियों के प्रति मन में जो शंका रहती है वह देश दर्शन से मिट जाती है और अज्ञात भय के स्थान में प्रीति का संचार हो जाती है। तीर्थ यात्रा की परंपरा को मनु आदि राजर्षियों तक ले जाना इस संस्था के महत्त्व और इसके प्रति सब की पूज्य बुद्धि को सूचित करता है।

धौम्य तीर्थ-यात्रा

काम्यक वन से उठकर पूर्व की दिशा में पहले नैमिषारण्य है जहाँ पवित्र गोमती नदी है। इसी दिशा में गंगा नदी, पंचाल, गया, फल्गु नदी, और कौशिकी नदी हैं। इसी ओर कान्यकुब्ज और प्रयाग में गंगा, यमुना का संगम है। इसी ओर पूर्व में महेंद्र पर्वत है। कालंजर पर्वत पर शिव का परम स्थान है। ज्ञात होता है कि कालंजर से उड़ीसा के महेंद्र पर्वत तक का रास्ता उस समय खुल गया था। आजकल का रेलमार्ग जो मैहर, कटनी रतनपुर, विलासपुर, रायपुर होता हुआ गंजम से मिल जाता है लगभग वही है। दक्षिण कोशल का यह प्रदेश उस समय आर्य उपनिवेश के अंतर्गत आ चुका था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दक्षिण दिशा के तीर्थों में निम्नलिखित नाम हैं–गोदावरी, वेणा (वर्तमान वेन गंगा) भागीरथी, पयोष्णी, प्रवेणी (वर्तमान पेनगंगा), शूर्पारक। ये नाम दो पुराने पथों की ओर संकेत करते हैं। एक तो दक्षिण कोशल से गोदावरी तक का मार्ग जो वेण गंगा के पूरब रहा होगा, और दूसरा गोदावरी से पश्चिम की ओर विदर्भ में होता हुआ कोंकण के शूर्पारण तक का मार्ग।

इसके बाद धुर दक्षिण के तीर्थों में पांड्य देश में अगस्त्य तीर्थ का उल्लेख है जो समुद्र तट का अगस्त्येश्वरं ज्ञात होता है। उसी के समीप कुमारी और ताम्रपर्णी नदी थी। कन्याकुमारी से उत्तर घूमकर पश्चिमी समुद्र के किनारे उत्तरी कनाड़ा प्रदेश में गंगवती नदी और समुद्र के संगम पर गोकर्ण तीर्थ है। यहाँ अगस्त्य के शिष्य तृणसोमाग्नि का आश्रम था। इसके बाद इसी दिशा के सिलसिले में सुराष्ट्र के तीर्थों का उल्लेख है जिसमें प्रभास, पिंडारक, उज्जयंत पर्वत, और द्वारवती मुख्य हैं। ज्ञात होता है कि पश्चिम और दक्षिण के लंबे समुद्र तट का मार्ग उस प्राचीन समय से ही काम में आने लगा था जबकि भीतर के घने जंगलों में आर्यों का प्रवेश नहीं हुआ था। द्वारका, प्रभास, शूर्पारक, गोकर्ण और कन्याकुमारी ये पाँचों तटवर्ती स्थान समुद्री यातायात के लंबे मार्ग की सूचना देते हैं।

पश्चिम की दिशा में अवंति जनपद, पश्चिमवाहिनी नर्मदा, पारा नदी और पुष्कर ये नाम निश्चित रूप से पहचाने जाते हैं। पुष्कर इस दिशा की अंतिम हद थी। इस यात्रा के उत्तर की ओर सरस्वती और यमुना के उद्मग प्रदेश, प्लक्षावतरण तीर्थ, गंगाद्वार, कनखल, भृगुतुंग, विशाला बदरी ये तीर्थ मुख्य हैं।

यात्रा के अंत में आध्यात्मिक धरातल से कहा गया है 'वहीं सच्चा तीर्थ है और वहीं सब धाम हैं जहाँ नारायण सनातन देव विद्यमान हैं। वहीं तपोवन, देवर्षि और सिद्धों के पवित्र तीर्थ हैं जहाँ महान् योगीश्वर देव मधुसूदन का निवास है।'

पुलस्त्य तीर्थ-यात्रा

इस प्रकरण के आरंभ में ही तीर्थ के आध्यात्मिक दृष्टिकोण की व्याख्या की गई है। 'जिसके हाथ पैर और मन सुसंयत हैं, जिसमें विद्या, तप और कीर्ति हैं, वह तीर्थ का फल पा लेता है। जो दान नहीं लेता, आत्मसंतोषी, पवित्र और नियमों का पालन करनेवाला और अहंकार से रहित है वह तीर्थ का फल पाता है। जो दंभरहित, त्यागी, जितेन्द्रिय, स्वल्पाहारी और सब दोषों से मुक्त है वह तीर्थ का फल पाता है। क्रोध रहित, सत्यशील, व्रतों में दृढ़ और सब प्राणियों को अपने समान जानने वाला मनुष्य तीर्थ का फल पाता है।' (आरण्यक 80/30/33)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुलस्त्य तीर्थ यात्रा पर्व के अंतर्गत भारतीय भूगोल का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया है, कितने ही नए तीर्थों के नाम उसमें आते हैं। वे स्थान जिनकी पहचान निश्चित है ये हैं—पुष्कर, पुष्करारण्य (पुष्करणा) अंबू (अर्बुद पर्वत), महाकाल, नर्मदा, दक्षिण सिंधु, चर्मण्वती, अर्वुद, प्रभाव, सरस्वती सागर संगम, द्वारवती (द्वारका), पिंडारक, एवं सिंधु और समुद्र का संगम। इसके बाद उत्तर दिशा में निम्नलिखित स्थानों के नाम हैं पंचनद, देविका (देवनदी), विनशन (मरुपृष्ठ पर सरस्वती के अदर्शन का स्थान), कुरुक्षेत्र, पुंडरीक (वर्तमान पूंडरी) सर्पदेवी (सफीदों), आपगा नदी, कपिष्ठल (कैथल), दृषद्वती, व्यासस्थली, विष्णुपद, सप्त सारस्वत तीर्थ, पृथूदक (पिहोवा) सिन्नहिती (कुरुक्षेत्र का सन्निहित ताल)। इसके अनंतर हिमालय के कुछ पुराने तीर्थों के नाम हैं, जैसे गंगाद्वार, कनखल, गंगा (धौलीगंगा) और सरस्वती (विष्णुगंगा) का संगम (विष्णु प्रयाग), रुद्रावर्त (रुद्रप्रयाग), भ्रदकर्णेश्वर (कर्ण प्रयाग), यामुन पर्वत (बंदर पूँछ), सिंधु का उद्‌मग, ऋषिकुल्या (ऋषिगंगा), भृगुतुंग (तुंगनाथ)।

पूर्व दिशा के तीर्थों में कई नाम ऐतिहासिक महत्त्व के हैं—गोमती गंगा का संगम, योनिद्वार (गया का ब्रह्मयोनितीर्थ), गया, फल्गु, राजगृह, तपोद (राजगृह में गर्म पानी के चश्मे), मणिनाग (राजगृह में मणियार नाग का मठ), जनकपुर, गंडकी, विशाल नदी (संभवतः वैशाली), नारायण तीर्थ (गंडकी नदी के किनारे जहाँ से शालिग्राम की बटिया आती हैं), कौशिकी (कोसी), चंपकारण्य (चंपारन), गौरीशिखर (गौरीशंकर चोटी), ताम्रा और अरुणा नदियों का संगम, कौशिकी (सुनकोशी और अरुणा का संगम), कोकामुख तीर्थ (ताम्रा, अरुणा और कौशिकी के संगम के समीप), चंपा (भागलपुर), संवेद्या तीर्थ (सदिया), लोहित्य (असम की लोहित नदी), करतोया (वोगरा की प्रसिद्ध नदी जो गंगा की धारा पद्‌मा में मिलती है), और अंत में गंगा और सागर का संगम जिसे आज भी गंगासागर कहते हैं।

इन स्थानों के सिलसिले में दो भौगोलिक मार्ग मुख्यतः दृष्टि में आते हैं, एक मार्ग गंगा के उत्तर कोसल देश से लौहित्य तक चला गया था। यह पुराना रास्ता था। कालिदास ने रघुदिग्विजय में भी इसी मार्ग का आश्रय लिया है। दूसरा मार्ग गंगा के दक्षिण मगध को पूरब में गंगासागर संगम के साथ, पश्चिम में मध्य देश के साथ और दक्षिण पश्चिम में दक्षिण कोसल के साथ मिलाता था।

इस तीसरे मार्ग का अनुसरण करते हुए इस यात्रा में निम्नलिखित स्थानों का उल्लेख है:—

मगध से दक्षिण पूर्व की ओर वैतरणी नदी, और पश्चिम दक्षिण की ओर शोण और नर्मदा का उद्‌गम स्थान है। गया से पश्चिम यह मार्ग शोण के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किनारे-किनारे चलता था। फिर जहाँ शोण और उसकी शाखा नदी जोहिला (प्राचीन ज्योतिरथा) मिलती हैं वहाँ से दक्षिण घूमकर नर्मदा के दक्षिण चेदि जनपद को पार करके एक मार्ग पश्चिम में विदर्भ तक जाता था जिसकी राजधानी वंशगुल्स (आधुनिक वासिम) का इस प्रकरण में उल्लेख हुआ है। और दूसरा रास्ता शोण के उद्‌मग के पास से बिलासपुर होता हुआ दक्षिण कोशल में घुसता था। कोशल का बड़ा केंद्र उस काल में ऋषभ तीर्थ कहा गया है (ऋषभंतीर्थ मासाद्य कोशलायां नराधिप, आर. 83/10)। ऋषभ तीर्थ बिलासपुर और रायगढ़ के बीच वर्तमान शक्ति रियासत के गुंजीगाँव का उसभ तीर्थ है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि तीर्थयात्रा के मार्ग एवं भूसन्निवेश और व्यापारिक यातायात के मार्ग बहुत करके एक ही थे। तीर्थों के क्रमबद्ध अध्ययन और पहचान की कुंजियाँ भौगालिक मार्गों में छिपी हैं। ज्ञात होता है कि ग्रंथ लेखक एक स्थान में खड़े होकर मार्गों के चौमुखी फटाव को देख रहा है, उसके वर्णन के सब सूत्र चारों दिशाओं से आकर केंद्र स्थान में मिल रहे हैं। मगध से कलिंग और मगध से मेकल होकर विदर्भ और कोसल के तो दो मुँही रास्तों का ऐसा स्पष्ट उल्लेख जैसा यहाँ है अन्यत्र नहीं पाया जाता है।

इस यात्रा प्रकरण के तीन तार अभी बच जाते हैं 1. दक्षिणी अंचल के तीर्थ 2. दक्खिन के पठार के तीर्थ, और 3. मध्यदेश के अंतर्गत तीर्थ। संक्षेप में ये तीनों इस प्रकार थे। उड़ीसा की वैतरणी नदी से दक्षिण घूमकर एक रास्ता के किनारे महेंद्र पर्वत (उड़ीसा का आधुनिक महेंद्रगिरि) और श्री पर्वत (कृष्णानदी के समीप श्रीशैल, वर्तमान नागार्जुनी कोंडा) के पास होता हुआ पांड्य देश तक चला गया था। वहाँ कावेरी और कन्याकुमारी को मिलाता हुआ यह सामुद्रिक मार्ग उत्तरी कनाड़ा के उसी गोकर्ण तीर्थ में जा मिलता था जिसका पहले उल्लेख हो चुका है। दक्षिणी पठार के अंतर्गत तीर्थों में हम पुनः उसी प्राचीन भूगोल को देखते हैं जिसमें गोदावरी से पश्चिम की ओर जानेवाला मार्ग वरदा और वेणा (वेन गंगा) के काँठों में होकर विदर्भ से सुपारा जा निकलता था। तीर्थों का तीसरा गुच्छा मध्यदेश के दक्षिणी अंचल में कालंजर चित्रकूट मंदाकिनी से शुरू होकर शृंगवेरपुर होता हुआ प्रयाग और प्रतिष्ठान (झूसी) को मिलता था और पुनः वही प्रयाग से काशी की ओर दशाश्वमेघ तक चला जाता था। यही संक्षेप में पुलस्त्य का कहा हुआ तीर्थयात्रा प्रकरण है। इसमें वंशगुल्स, ऋषभतीर्थ, श्रीपर्वत और दशाश्वमेघ नामों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह प्रकरण गुप्तकाल के आसपास की भौगोलिक संज्ञाओं को लेकर रचा गया हो और इस प्रसंग में रख दिया गया हो, जब कि पुराना प्रकरण भी धौम्य यात्रा के रूप में अपनी जगह पड़ा रह गया[21]।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवी पीठों के नामों के रूप में मातृभूमि की अखंड कल्पना के साथ-साथ भारत के धार्मिक इतिहास की सामग्री भी अंतर्निहित है। पेशावर जिले की भीमादेवी, कांगड़ा नगरकोट (प्राचीन जालंधर क्षेत्र) की ज्वाला देवी, बलूचिस्तान की हिंगुलादेवी, विंध्याचल की विंध्यवासिनी, कामरूप की कामक्षा देवी इत्यादि देवियाँ प्राचीन मातृदेवी या मही माता की सर्वत्र व्याप्त पूजा परंपरा पर आश्रित थीं जिन्हें एक नए विधान के अंतर्गत समस्त देश में पूजनीय मान लिया गया।

देवी पीठों की संख्या के विषय में कई मत हैं। चतुष्पीठ तंत्र के अनुसार ये पीठ चार थे। हेवज्रतंत्र[22] (आठवीं सदी) के अनुसार चार पीठों के नाम ये थे—जालंधर, ओडियान, पूर्णगिरि और कामरूप। कालिका पुराण का कथन है कि पश्चिम के ओडपीठ की देवी का नाम कात्यायनी, उत्तर के जालशैल पीठ की चंडी, दक्षिण के पूर्णशैल की पूर्णशैल की पूर्णेश्वरी और पूर्व के कामरूप की कामेश्वरी है। इसमें जालशैल की पहचान जालंधर से है। त्रिगर्त (कुल्लू कांगड़ा) प्रदेश अभी तक जालंधरायण कहलाता है। यहीं जालंधर पीठ है जिसके समीप नगर कोट में प्रसिद्ध ज्वालामुखी देवी है जो समस्त कुरुक्षेत्र जनपद एवं पंजाब और उत्तरप्रदेश में दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। पूर्णशैल या पूर्णगिरि की पहचान दक्षिण की तुलजा भवानी[23] से की जाती है। कामरूप असम देश का प्रसिद्ध तीर्थ है। ओडियान या उड्डियान स्वात नदी की घाटी का पुराना नाम था जो गँधार का ही एक भाग था। इसे कहीं-कहीं उद्यान भी कहा है जो महाभारत (वन. 83/93-94) के उद्यंत का ही दूसरा रूप है। यहाँ योनिद्वार नामक तीर्थ में भीमादेवी का अत्यंत प्रसिद्ध स्थान था। चीनी यात्री श्यूआन् च्युआङ् ने लिखा है कि पेशावर जिले में शाहबाज़ गढ़ी के पास भीमादेवी का जो महेश्वर की पत्नी मानी जाती है एक प्रसिद्ध स्थान था जहाँ नीले पत्थर की बड़ी मूर्ति थी। स्थानीय किंवदंती के अनुसार यह स्वयंभूमूर्ति थी जिसके दर्शन के लिए दूर-दूर से यात्री आते थे और सात दिन का उपवास रखते थे। यहीं पर्वत के नीचे महेश्वर शिव का बड़ा मंदिर था जो पाशुपतों का बड़ा केंद्र था (बाटर्स सियुकी 1/221)। इससे ज्ञात होता है कि गंधार देश में शिव पूजा और देवीपूजा का बहुत बड़ा केंद्र था जो प्रसिद्ध तीर्थ माना जाता था। भीमा और कामाख्या ये दो पीठ देश के दो छोरों पर स्थित हैं। आईन अकबरी में भी चार देवी पीठों का उल्लेख है जिसमें भीमादेवी के स्थान पर कश्मीर का शारदा पीठ[24] गिनाया गया है और पूर्णा के लिए तुलजाभवानी नाम दिया गया है। तुलजापुर की देवी इतनी प्रसिद्ध थी कि शिवा जी ने प्रतापगढ़ दुर्ग बनवाते समय अपनी कुलदेवी तुलजाभवानी की भी वहाँ स्थापना की थी।

कालिकापुराण (अ. 18/42-51) में ही अन्यत्र के सात पीठों का उल्लेख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। जिसमें ये तीन नाम नए हैं देवीकूट, (देवीकोट्ट, आधुनिक चानगढ़ जिला दीनाजपुर), दिक्कर वासिनी (सदिया के समीप दिकरंग स्थान), ललित कांता (गोहाटी के समीप संध्या लतिला कांता की धाराएँ)। रुद्रयामल तंत्र (लगभग नवीं सदी) में दस देवी पीठों का उल्लेख है कामरूप, जालंधर, पूर्णगिरि, ओड्डियान, वाराणसी, ज्वलंति (संभवतः ज्वालामुखी), मायावती, मधुपुरी (मथुरा), अयोध्या और काँची। कुलार्णवतंत्र में पीठों की संख्या 18 है, जिसमें ये नाम नए हैं हिंगुला, कोटिमुद्रा, अंतर्वेदी, प्रयाग, मिथिला, मगध, मेकला अंग, वंग, कलिंग, सिंहल, स्त्रीराज्य, राढ़ा और गौड़। इस प्रकार इन नामों की गिनती अनियत थी। आवागन के विस्तार एवं धार्मिक कारणों से नए-नए तीर्थ बनते और सूची में मिला लिए जाते थे। कुब्जिका तंत्र (पटल 7) में 42 सिद्ध पीठ कहे हैं जिनमें से अनेक नाम देश भर में छिटके हुए थे और भौगोलिक एकता की साक्षी देते हैं—हिंगुला, जालंधर, नेपाल, सिंहनाद या सिंहल, मणिपुर, बद्री, प्रयाग, त्रिवेणी, बंगाल की मुक्तवेणी, गंगासागर संगम, उड्डियान, माहिष्मती, त्रिपुरा, विंध्यागिरि, वैद्यनाथ, कामरूप आदि। ज्ञानार्णवतंत्र (पटल 14) में देवीपीठों की संख्या 50 हो गई जिसमें से कुछ विशिष्ट नाम ये हैं—कश्मीर, पौंडवर्धन (बंगाल में वोगरा जिले का महास्थान), एकाम्र (भुवनेश्वर, उड़ीसा), कैलास, अर्बुद (आबू), भृगुतुंग, केदार, ओंकार, (मांधता), गोकर्ण (पश्चिमी समुद्र के तट पर उत्तरी कनाड़ा), विरजा (वैतरणी के तट पर जाजपुर, उड़ीसा), राजगृह, एलापुर (इलोरा), मलय, श्रीशैल, महेंद्र और उड्डियान। मत्स्य-पुराण के एक प्रकरण में[25] (अ. 13) पीठों की संख्या 108 तक पहुँच गई है। प्रत्येक पीठ में वहाँ की अधिष्ठातृ देवी का नाम भी बताया गया है[26]। देवी पुराण की एक अन्य सूची में चिदंबर की मीनाक्षी, शाकंभरी, कांची की अन्नपूर्णा, चीनदेश की नील सरस्वती एवं अन्य कितने ही नए नामों का उल्लेख है।

सूचियों में नामों का भेद उलझन का कारण नहीं, उससे तो धार्मिक क्षेत्र की उन्मुक्त बुद्धि, लचकीली उदारता का ही परिचय मिलता है। तीर्थ और पुण्य क्षेत्रों के निर्माण में देवी के पीठों की भाँति अन्य धर्मों के पवित्र स्थानों की संख्या भी ऐतिहासिक विकास का परिणाम था। इन सूचियों से यह तथ्य तो स्पष्ट है कि हिंगुलाज से कामाक्षा और शारदा से सिंहल तक का क्षेत्र मातृदेवी की पूजा के द्वारा गहरी धार्मिक एकता का अनुभव करता था। प्रायः प्रत्येक परिवार एक-न-एक देवी के साथ अपना संबंध मानता है। उस कुटुंब के लोग जहाँ भी हों उस पुराने संबध को बनाए रखते हैं और बच्चों के मुंडनादि संस्कार के लिए वहाँ की यात्रा करते या ज्ञान के लिए जाते हैं। परिवार या जातियाँ दूर देशों में फैलती हुई भी पहली धुरी या कीली के साथ अपने संबंध को जोड़े रहती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धार्मिक दृष्टि से देवियाँ पृथ्वी की रूप हैं। जन ने प्राथमिक अवस्था में भूमि के साथ जिस संबंध का अनुभव किया उस का विशिष्ट रूप एक-एक प्रदेश की मातृपूजा थी।

मातृभूमि को इस इस प्रकार देवत्व प्रदान करने में बौद्ध, जैन आदि धर्मों ने भी पूरा-पूरा भाग लिया है; उनके तीर्थस्थान भी चारों दिशाओं में फैले हुए हैं। जैनधर्म के अनुसार तीर्थ दो प्रकार के हैं; 1. सिद्ध क्षेत्र जहाँ से तीर्थंकर या दूसरे महात्मा सिद्धपद या निर्वाण को प्राप्त हुए, 2. अतिशय क्षेत्र जो किसी मूर्ति या स्थानीय देवता के चमत्कार के कारण तीर्थस्थान बन गए। श्वेतांबर लोग ऐसा कोई भेद नहीं मानते। जैन तीर्थों में कुछ प्रसिद्ध नाम इस प्रकार हैं—अष्टापद (कैलास), ऊर्जयंत (काठियावाड़ में गिरनार), शत्रुंजय (पालिताना, काठियावाड़), पावापुरी, तुंगीगिरि, राजगृह के समीप पंच पर्वतों में ऋषिगिरि, जिनकांची, श्रवण बेलगोल[27], वदरी नगरी (मूडबिद्री)। जिनप्रभ सुरि विरचित विविध कल्पतीर्थ के अनुसार प्रसिद्ध तीर्थ निम्नलिखित स्थानों में थे—उत्तरप्रदेश में अहिछत्रा, हस्तिनापुर, मथुरा, वाराणसी, कांपिल्य, अयोध्या, श्रावस्ती और कौशाम्बी; बिहार में राजगृह का वैभारगिरि, पावा, पाटलिपुत्र, चंपा, मिथिला; राजपूताना-मालवा में अर्बुदाचल (आबू); गुजरात में शत्रुजय उज्जयंत (रैवतगिरि, गिरनार), अणहिलपुर (अनिलवाडा, पाटन); दक्षिण में प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठन, जि. औरंगाबाद), नासिक।

इन नामों से ज्ञात होता है कि सात में से पाँच महापुरियाँ जैनों के भी तीर्थस्थान थे। मथुरा तो लगभग 1200 वर्षों तक (विक्रमपूर्व दूसरी सदी से विक्रम की दसवीं सदी तक) जैनधर्म का बहुत बड़ा धार्मिक एवं कला केंद्र था। तीर्थयात्रा के लिए जैनों का धर्मप्रेम विशेष समारोह के रूप में प्रकट होता है। प्राचीन समय में धनाढ्य लोग किसी आचार्य की प्रेरणा से संघ-यात्राएँ निकलते थे। यात्रा की घोषणा हो जाती थी और जो व्यक्ति चाहता उसमें सम्मिलित हो सकता था। इस प्रकार की संघ-यात्राएँ बड़ी धूमधाम से उठतीं और कितने ही तीर्थस्थानों का भ्रमण करके लौटती थीं। इस प्रकार यात्रा उठानेवाले महानुभाव संघपति (संघई) सिंघी कहलाते थे।

अवश्य ही इन स्थानों में कला और स्थापत्य की भी बहुत अधिक सामग्री दर्शकों को मिलती थी। आबू, शत्रुंजय पालिताना और गिरनार के जैन मंदिर भारतीय कला के भी तीर्थ हैं। बिहार, बंगाल, उड़ीसा, दक्षिण, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यभारत, मालवा, कर्नाटक आदि में शायद ही कोई ऐसा प्रसिद्ध स्थान हो जहां किसी न किसी रूप में जैनधर्म को मानने वालों ने अपना संपर्क न स्थापित किया हो। इसका एक अच्छा उदाहरण इलोरा के गुफामंदिर हैं जहाँ शैव और बौद्ध गुफाओं के अतिरिक्त जैनों ने भी अपने धर्म की गुफाएँ बनाईं। उड़ीसा की उदयगिरि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और खंडगिरि पहाड़ियों की गुफाओं में जैनों ने अपने विहार बनवाए जिनका समय विक्रम पूर्व दूसरी और पहली सदी है। यहाँ प्रतापी सम्राट् खारवेल के समय जैन धर्म का प्रबल उत्थान हुआ था, जिसका प्रमाण हाथी गुम्फा, रानी गुम्फा और अनंत-गुम्फा आदि लगभग तीस गुफाओं के रूप में अभी तक सुरक्षित है।

बौद्धों ने भी तीर्थयात्रा को बड़े भक्तिभाव से अपनाया। सम्राट् अशोक ने स्वयं महाराजा बुद्ध के जन्मस्थान की यात्रा की थी। सब बौद्ध भिक्षु और गृहस्थ बुद्ध के जीवन से संबंधित चार महास्थानों को यात्रा करते थे, जन्मस्थान लुंबिनी, बोधिस्थान बुद्ध गया, धर्मचक्र प्रर्वतन का स्थान सारनाथ और निर्वाण का स्थान कुशीनगर। पवित्र स्थानों की यह सूची समय पाकर बहुत बढ़ी। कहा जाता है कि अशोक ने भगवान बुद्ध की स्मृति में 84 हजार स्तूपों की स्थापना की थी। ये स्तूप गंधार से जहाँ तक अशोक का राज्य था प्रायः सारे देश में फैले हुए थे। वस्तुतः बौद्धों की पुण्य भूमि लगभग भारतवर्ष की प्राचीन सीमाओं के समकक्ष ही हो गई थी। ऐतिहासिकों के अनुसार भगवान् बुद्ध पश्चिम में मथुरा से आगे नहीं गए थे, किंतु धार्मिक अनुश्रुति के अनुसार गंधार में भी बुद्ध की यात्रा हुई थी। कहा जाता है कि पश्चिमी गंधार की राजधानी पुष्कलावती (वर्तमान चारसद्दा) के समीप बुद्ध ने हारीती नाम की एक राक्षसी के मन मे करुणा का संचार करके उसे अपने अनुगत बना लिया था। पीछे वही बच्चों की अधिष्ठात्री देवी बन गई। गंधार की पूर्वी राजधानी तक्षशिला और उसका उत्तरी भाग स्वात नदी की घाटी बौद्धस्तूपों और मंदिरों से पट गए। काबुल के पश्चिम में बामियाँ घाटी में बुद्ध की लगभग 150 फुट ऊँची मूर्ति पहाड़ में काट कर बनाई गई। गुप्तकाल और उसके आसपास उत्तर पश्चिम भारत का यह प्रदेश बौद्ध धर्म का क्षेत्र बन चुका था। मध्य एशिया की ओर भारतीय संस्कृति के प्रसार का महत्त्वपूर्ण मार्ग गंधार कपिश बाल्हीक के बौद्ध केंद्र ही थे।

शेष भारत में भी उत्तर से धुर दक्षिण तक बौद्धों के अनेक पवित्र केंद्र थे जहाँ रह कर बौद्ध भिक्षुओं ने धर्म प्रचार किया और कई प्रकार की सुंदर कला सामग्री का निर्माण किया। भाजा, कार्ला, कंहेरी, बाघ, अजंता, इलोरा की चैत्य गुफाएँ और विहार, सारनाथ, साँची, भरहुत, मथुरा, अमरावती, नागार्जुनी कोंडा के स्तूप और तोरिण वेदिकाएँ बौद्धों के दूर-दूर तक फैले हुए तीर्थस्थान का परिचय देते हैं, जिनके मूल में समान धार्मिक भावना और कला प्रवृत्ति काम कर रही थी।

विष्णुपीठों और शक्तिपीठों की तरह पिछले बौद्धों ने यक्षपीछों की कल्पना की। यक्षों की पूजा स्थान-स्थान पर पुराने समय से चली आती थी। बौद्ध, शैव और जैन धर्म के साथ यक्षपूजा घुलमिल गई। बौद्ध साहित्य में यक्षों की लंबी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूचियाँ पाई जाती हैं। देश की भौगोलिक इकाई की दृष्टि से महामायूरी ग्रंथ[28] की यक्षसूची शिक्षाप्रद है। कहते हैं कि स्वाति नाम के भिक्षु को साँप ने डस लिया था। उसके प्राण बचाने के लिए आनंद ने बुद्ध से सहायता की याचना की और बुद्ध ने महामायूरी मंत्र का उपदेश किया। इसी सिलसिले में बहुत से देवी देवताओं और छुटभैये यक्षों की गुहार की गई। अवश्य ही यह भौगोलिक सामग्री कुषाण काल के आसपास एकत्र की गई होगी। निम्नलिखित सूची में उन स्थानों के नाम दिए गए हैं जिनकी पहचान निश्चित है। कोष्ठक में उन यक्षों के नाम भी हैं जो वहाँ के देवता थे।

पाटलिपुत्र (क्रकुच्छंद), स्थूना (गंडकी के दक्षिण तट पर मल्लजनपद का ग्राम, अपराजित), राजगृह (वज्रपाणि), कपिलवस्तु (काल उपकालक), श्रावस्ती (वृहस्पति), विराट (जयपुर में वैराट, महेश्वर), साकेत (सागर) वैशाली (बसाढ़, जि. मुजफ्फरपुर, वज्रायुध), वाराणसी (महाकाल), चंपा (सुदर्शन), द्वारका (विष्णु), ताम्रपर्णी (विभीषण), उरगा (पांड्य देश की राजधानी उरगपुर, मर्दन), बहुधान्यक (रोहितक, कपिल), उज्जयिनी (वसुत्रात), अवंति (वसुभूति), भरुकच्छ (भरुक), आनंदपुर (वर्तमान बड़गनर, नंद), अग्रोदक (अगरोहा, माल्यघर), सुवास्त (स्वात, शुक्लदंष्ट्र), गिरिनगर (गिरनार, काठिछयावाड़ महागिरि), विदिशा (वासव), रोहितक (कार्तिकेय), वैणवातट (वेणानदी, शतबाहु), कलिंग (वृहद्रथ), स्त्रुघन् (आधुनिक सुघ, थानेश्वर के उत्तर में, दुर्योधन), शाकल (स्यालकोट सर्वभ्रद), वसाति (सीबी उत्तरी बिलोचिस्तान, बसुभद्र), वर्णु (बन्नू कपिल), गांधार (प्रमर्दन), तक्षशिला (प्रभंजन), रौरुक (रोड़ी, प्रभंकर), लम्पाक (लमगान, अफगानिस्तान, कलहप्रिय), मथुरा (गर्दभक), पांड्य मथुरा (दक्षिण मदुरा, विजय वैजयंत), मलय (पूर्णक), केरल (किन्नर), पौंडू (उत्तरी बंगाल, मेघमाली), प्रतिष्ठान (पैठण, खंडक), पीतंगल्य (पीतलखोरा, खानदेश में चालीस गाँव से 18 मील पश्चिम, संकारी), नासिक्य (सुंदर), करहाटक, (करहाड़ सितारा, नंदिक और उसका पुत्र नंदी), कोशली (दक्षिण कोशल, महाभुज), वनवासी (वनवासी, उत्तरकनाडा, पालक), त्रिपुरी (चेदी की राजधानी तेवर, मकरंद), उदुंबर (होशियापुर, पठाणकोट, अंडभ), कौशांबी (अनाभोग), अहिच्छत्र (रतिक), काम्पिल्य (कपिल), उज्जिजहाना (उझानी, बदायूं, बकुल), हस्तिनापुर (प्रसभ), कुरुक्षेत्र (यक्ष तरार्क, कुत रार्क यक्षी उलूखल मेखला), कोटिवर्ष (दीनाजपुर उत्तरी बंगाल,महासेन), गिरिव्रज (मागध), सैंधव (खिउड़ा, मणिकानन), मध्यमिका (चित्तौड़, सौभद्रेय), मरूभूमि (मागध), दरद (मंदर), काश्मीर (प्रभंकर), काश्मीर की सीमा (पांचिक), चीनभूमि (कम्बोज के उत्तर, पाँचिक का ज्येष्ठ पुत्र), कुलिंद (यमुना और सतलज के बीच का पहाड़ी प्रदेश, उष्ट्रपाद), कापिशी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(लंकेश्वर), वाल्हि (वाल्हीक, महाभुज), तुखार (वक्षु नदी के तट का तुखारिस्तान, वेश्रवण का पुत्र जिनर्षभ), सिंधुसागर (सातगिरि और हैमवत), द्रमिड़ (पंचालगंड), सिंहल (धनेश्वर), अम्बुलिम (वर्तमान अम्ब, अटक से 60 मील ऊपर, पिंगल), पारत (बलोचिस्तान का हिंगुल प्रदेश, पाराशर), शकस्थान (अफगानिस्तान और ईरान की सीमा पर सीसतान, शंकर), उड्डियान (स्वातनदी की घाटी, कराल), वोक्काण (वखान, अफगानिस्तान का उत्तर पूर्वीभाग, चित्रसेन), रमठ (गज़नी के आसपास हींग का प्रदेश, रावली)[29]।

इस सूची में यद्यपि निश्चित भौगोलिक क्रम का अभाव है किंतु यह स्पष्ट है कि इसमें सिंहल से वाल्हीक कपिशा, स्वात और काश्मीर तक एवं शकस्थान, हिंगुलाज और सिंधुसागर संगम से बंगाल के पुंड्रवर्धन तक का समस्त भू-खंड सम्मिलित था। केरल, मलय और पांड्य ये तीनों बड़े भाग दक्षिणी भारत की सीमाओं के सूचक हैं। वेम, कनिष्क आदि शक राजाओं के समय में भारतवर्ष का भौगोलिक क्षितिज पाटलिपुत्र से शकस्थान तक विस्तृत था। उस समय मध्य एशिया की चीनभूमि एवं कूचा का प्रदेश भी इस साम्राज्य के अंतर्गत थे। महामायूरी के संपादक श्री सिलवा लेबी के अनुसार संस्कृत का कौशिक जो महामायूरी की सूची में है वृहत्संहिता का कुशिक या कुचिक और मध्य एशिया का कूचा है। उस समय शकस्थान में शंकर यक्ष की मान्यता थी। वेम और कनिष्क आदि शकों ने शैवधर्म की दीक्षा वहीं ली जान पड़ती है। पहलव जो कि शकों के पूर्वज थे वेमचित्र यक्ष के मानने वाले कहे गए हैं। ज्ञात होता है कि सम्राट् वेमतक्षम का नामकरण इसी यक्ष के नाम से हुआ।

महामापूरी पंचरक्षा स्रोत की यक्षसूची एक दृष्टांत मात्र है। यह उस धार्मिक शैली की उपज है जिसमें देवी देवताओं के अर्वाचीन और प्रचीन रूप एवं विविध स्थानों के अधिष्ठातृ देवताओं का समन्वय करके एक ऐसी माला गूंथने का प्रयत्न किया गया जो मातृभूमि के प्रत्येक प्रदेश के पुष्प और वहाँ के विश्वासों के सौरभ को लेकर बनी हो। प्रायः प्रत्येक धर्म ने इस प्रकार की मालाओं से मातृभूमि के रूप को सजाने का प्रयत्न किया।

संदर्भ

1. अस्तयुतरस्यां दिशि देवतात्मा हमालयों नाम नगाधिराजः। (कुमारसंभव 1/1) दिवं यदि प्राथयसे वृथाश्रमः पितुः प्रदेशास्तव देवभूमियः॥ (कुमार. 5/45)। ब्रह्मचारी वेश में शिव पार्वती से कहते हैं– 'यदि स्वर्ग की अभिलाषा से तप करती हो तो श्रम व्यर्थ है, क्योंकि हिमालय के स्थान स्वयं देवभूमि है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

2. जयचंद्रविद्यालंकार, भारतभूमि, पृ. 111, जहाँ हिमालय के भूगोल का अत्यंत सुलझा हुआ विवेचन है। हिमालय के देव भूमि बनने का कारण है वहाँ विष्णु और शिव जैसे देवों की तपश्चर्या। इन देवताओं के लिए भी जीवन में दीर्घकालीन कठोर तपश्चर्या मानसिक समाधि की कल्पना सचमुच अद्‌भुत है। जहाँ इस समय विशाला बद्री है, वहाँ गंधमादन पर्वत की चोटी पर नर नारायण ने आश्रम बनाकर तप किया। वनपर्व में लिखा है कि कृष्ण ने विशाला बद्री में एक पैर से खड़े होकर केवल वायु खाकर सौ वर्ष तक तप किया (वनपर्व 101) कैलास पर शिव ने दीर्घकाल तक अखंड समाधि लगाई। इस प्रकार इन महान् देवों की तपश्चर्या द्वारा हिमाचल को यह पवित्रता मिली।
3. ए स्कैच आव दी ज्योग्राफी एंड दी ज्यालाजी आव दी हिमालय, भाग, 1, पृ. 7
4. बद्रीनाथ की ओर से अवतीर्ण विष्णुगंगा जिसे सरस्वती भी कहते हैं, और द्रोणगिरि के पश्चिम से आई हुई धौली गंगा का जोशी मठ में संगम।
5. विष्णुप्रयाग से बहकर आई हुई अलकनंदा और नंदाकना पर्वत से बहकर आई हुई नंदाकिनी का संगम।
6. नंदाकोट और त्रिशूल शिखरों के जलों को लानेवाली पिंडरगंगा और अलकनंदा का संगम।
7. केदारनाथ की ओर से आने वाली मंदाकिनी और अलकनंदा का संगम।
8. गंगोत्री से आनेवाली भागीरथी का अलकनंदा के साथ संगम अलकनंदा की चौड़ी धारा धीर और शांत है, किंतु भागीरथी बड़े गर्जन-तर्जन के साथ उछलती हुई धारा से उसमें मिलती है। यह दृश्य अत्यंत रमणीक है।
9. देवप्रयाग से नीचे नदी की धारा का नाम गंगा पड़ता है। यही कनखल के पास पहली बार मैदान में उतरी है, इसे ही गंगा द्वार कहते हैं।
10. राधाकुमुद मुकर्जी फंडामैंटल यूनिटि ऑफ इंडिया, पृ. 37,38
11. शंकराचार्य ने भी देश के चार कोनों में चार मठों की स्थापना की थी, बद्री केदार में ज्योतिर्मठ, पुरी में गोवर्धन मठ, पुरी में गोवर्धन मठ, दक्षिण में शृंगेरी मठ और द्वारका में शारदा मठ। भारतीय दर्शन और धर्म के क्षेत्र में इन केंद्रों ने पर्याप्त कार्य किया है।
12. बद्रीनाथ में गर्म जल के कुंड।
13. तुंगभद्रा की एक सहायक नदी जो ऋष्यमूक पर्वत से निकलती है (बिलारी जिले के हंपी स्थान के उत्तर में है)। इसी के समीप पंपा सरोवर है।
14. भुवनेश्वर (उड़ीसा) में कहा जाता है कि शिव ने अपने त्रिशूल से सरोवर का निर्माण करके दुर्गा की प्यास बुझाई थी, जब वे भुवनेश्वर के कीर्ति और वास नामक राक्षसों का वध कर चुकी थीं।
15. सिंधु सागर संगम के समीप, कच्छ भुज के कोने में स्थित सघपत स्थान से दक्षिण पश्चिम 18 मील पर।
16. काश्मीर में जेलहम के दाहिने किनारे पर वरामूला, यहाँ विष्णु ने वराह रूप में अवतार लिया था। यहाँ आदि वराह का एक प्राचीन मंदिर भी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

17. गंडक और गंगा के संगम पर स्थित सोनपुर जो हरिहर क्षेत्र नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ कार्तिकी पूर्णिमा को उत्तरी भारत का सबसे बड़ा मूला लगता है।
18. नेपाल की सीमा पर गंडक के उद्गम से कुछ ही दूर काली गंडकी नदी के किनारे नारायण विष्णु का प्रसिद्ध मंदिर।
19. आरण्यक पर्व के अंतर्गत इस प्रकरण का नाम तीर्थ-यात्रा पर्व है। पूना के संशोधित संस्करण में अध्याय 80 से अध्याय 153 तक कुल 74 अध्याय इस उपपर्व में हैं जिनके निम्नलिखित तीन विभाग हैं (1) पुलस्त्य तीर्थ यात्रा (अध्याय 80—अ. 83), (2) धौम्य तीर्थ-यात्रा (अ. 85—अ. 88) (3, लोमश तीर्थ-यात्रा अ.89 अ. 153)।
20. इयं राजर्षिभिर्याता पुण्यकृद्भिर्युधिष्ठिर।
मन्वादिभिर्महाराज तीर्थयात्रा भयापहा॥ —(आरण्यक 90/10)
21. पुलस्त्य यात्रा के अंत की रोचक फलश्रुति भी उसकी मिलावट सूचित करती है। धौम्य तीर्थ यात्रा के अंत में इस प्रकार की फलश्रुति नहीं है।
22. साधनमाला नामक बौद्ध ग्रंथ के अनुसार जालंधर के स्थान पर श्रीहट्ट है, शेष नाम वे ही हैं।
23. निजाम राज्य में धारशिव (वर्तमान उस्मानाबाद) के दक्षिण तुलजापुर स्थान है, उसके पास पहाड़ की तलहटी में तुलजादेवी का मंदिर है, यह शोलापुर से 28 मील उत्तर पूर्व में है।
24. यह स्थान आजकल शारदी कहलाता है जो कृष्णागंगा (विस्तता की सहयक) और कंकतोरी (सरस्वती), के संगम पर है। इसी से कश्मीर शारदा देश कहलता है। (जयचंद्र विद्यालंकार भारतभूमि, पृ. 141)।
25. यह सूची अन्यत्र भी मिलती है, देवी भागवत 7/30/55-83, पद्मपुराण सृष्टिखंड 17/184-211, स्कंदपुराण अवंती खंड के अंतर्गत रेखाखंड 98/64-92
26. देवी पीठ संबंधी इस सामग्री के लिए मैं श्री दिनेशचंद्र सरकार का ऋणी हूँ—दी शाक्त पीठ बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की मुख-पत्रिका (भाग 14, 1948:), पृ. 1 से 108 तक।
27. यह स्थान श्रीरंगपट्टण से 12 कोस पर है। यहाँ गोम्मट स्वामी की 60 हाथ की कायोत्सर्गवाली मूर्ति है। गोम्मटस्वामी बाहुबली का लोकप्रसिद्ध नाम है।
28. चौथी और आठवीं शताब्दी के बीच में पाँच बार महामापूरी ग्रंथ का चीनी भाषा मे अनुवाद हुआ। श्रीमित्र (317 से 322 ई.), कुमारजीव (402-412 ई.) : संघवर्मन (516 ई.) और इत्सिग (705 ई.) और अमोघवज्र (741-71) जैसे विद्वानों ने इसमें हाथ बंटाया। बाणभट्ट ने भी हर्षचरित्र में विद्याओं की रानी महामायूरी का उल्लेख किया। शैलेंद्रबोधि, ज्ञानसिद्धि और शाक्यप्रभ का किया हुआ इसका तिब्बती अनुवाद कंजुर संग्रह में है।
29. 'महामायूरी की भौगोलिक सामग्री' श्री सिलवाँ लेवी के मूल फ्रांसीसी लेख से; जनरल एशियाटिक, 1925; अनुवादक श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, यू.पी. हिस्टोरिकल सोसायटी का जनरल, जिल्द 15, भाग 2, पृ. 24-52।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-6

आर्थिक और भौतिक जीवन

देश के आर्थिक ढाँचे और भौतिक जीवन या रहन-सहन में भी एक सार्वदेशिक समानता है। यद्यपि इन विषयों में एक दूसरे से भेद भी बहुत है किंतु भारतवर्ष के रहन-सहन के ढंग को हम दूसरे देशों से अलग पहचान सकते हैं। यह सारा देश धन और भौतिक जीवन के प्रति एक प्रकार का दृष्टिकोण रखता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार बड़े आदर्श हैं जिन्हें पाने के लिए जीवन में प्रयत्न करना आवश्यक कहा गया है। धर्मानुसार धन का उपार्जन, उससे अपना और अपने कुटुम्ब का पालन, हित मित्र ज्ञाति संबंधियों का संवर्धन और योग्य पात्रों में दान, यही धन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण रहा है।

वैदिक समय से यह देश कृषि प्रधान रहा है। आज भी 80 प्रतिशत जनता कृषि से जीवन निर्वाह करती है। अतएव भारतीय जीवन का मुख्य ठाठ गाँवों के रहन-सहन पर खड़ा है। गाँवों के आर्थिक धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को टटोलने से जनता के दृष्टिकोण में विलक्षण एकता मिलती है। लोगों की आवश्यकताएँ कम, जीवन सादा और संतोषी है। वे खुले स्वभाव के मिलनसार और सरल प्रकृति के हैं। पृथ्वी के निकट रहने वाले मनुष्यों में जो स्वाभाविक विश्वास की प्रवृत्ति होती है वह भारतीय जीवन में प्रायः सर्वत्र मिलेगी। किसान के जीवन की भाषा भारत के राष्ट्रीय मन की भाषा है। उसके द्वारा हम चारों दिशाओं में फैले हुए भारतीय मानव के हृदय को छू सकते हैं। किसान अपनी भूमि पर हजारों वर्षों से श्रम करता आया है। उसके हल बैलों का ठाठ सब जगह एक सा है। वह अपनी कृषि के उपार्जित फल पर उचित अधिकार चाहता है और यह यदि उसे प्राप्त हो तो भारतीय कृषक का जीवन सुख का जीवन समझा जाता है। भारत के आर्थिक जीवन की मूलभित्ति सदा से किसानों का जीवन रही है, राज्यों का उलट फेर नहीं–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राज्ञां सत्वे असत्वे वा विशेषों नोपलक्ष्यते।
कृषीवल निवाशे तू जायते जगतो विपत॥

कृषीवल-संस्कृति भारतीय आर्थिक जीवन की मौलिक सच्चाई और एकता है। अनेक नए प्रदेश आबाद हुए और बहुत सी जातियाँ बाहर से आकर यहाँ बस गईं। वे सब कृषि जीवन के ताने बाने में समाती गईं। अपनी-अपनी विशेषताओं को रखते हुए भी मातृभूमि के साथ मिलजाने का यही खुला हुआ रास्ता था कि लोग किसान की संस्कृति को अपना कर भूमि के साथ बद्धमूल हो जाते थे। आर्य, द्रविड़, किरात, निषाद सबको एक जीवन के साँचे में ढाल कर आर्थिक संतुलन देने का उपाय कृषि जीवन ही था। किसान भारत का सच्चा पृथ्वी पुत्र है। भूमि के अतिरिक्त अन्य संबंधों या अधिकरों की कल्पना उसके लिए विदेशी है। भारतीय जीवन में, एकता के प्रतिपादक कितने ही भौतिक साधन हैं जैसे नदियाँ, वृक्ष वनस्पति, खनिज संपत्ति, पशुपक्षी उद्योग-धंधे आदि। नदियों की लंबी धाराएँ भूमि के एक भाग को दूर से मिलती हैं। हिमवान सें गंगासागर संगम तक गंगा का प्रवाह एक है। दरददेश के पर्वतों से मैदानों में उतरती हुई सिंधु नदी सिंधु सागर संगम के प्रदेश की नाड़ी रही है जो वहाँ की कृषि और व्यापार दोनों की नियामक थी। पश्चिम वाहिनी नर्मदा विंध्य के पूर्वी छोर अमरकंटक को समुद्रतट के मरुकच्छ से मिलती थी। पूर्ववाहिनी ओदवरी सह्यात्रि से महोदधि तक बहती हुई मानो संपूर्ण दक्षिणी पठार का मानदंड थी। सबलोग इन नदियों के साथ अपना संबंध समान रूप से मानते थे। ये सबकी पोषणकर्ती माताएँ थीं:–

नद्यः विश्वस्य मातरः।

नदियों के द्वारा व्यापार के मार्ग भी बनते थे। गंगा सदा से उत्तरी भारत के यातायात की प्रधान नाड़ी रही है। लंबी-लंबी सड़कें देश की एकता के मुख्य साधन हैं। संस्कृति के उषःकाल में ही राजमार्गों के निर्माण और रक्षा का महत्त्व लोगों के ध्यान में आ गया था। "हे पृथ्वी! जन के यातायात के लिए एवं रथों तथा शकटों के आने जाने के लिए जो मार्ग तुम्हारे ऊपर बने हैं, जिन पर सबको चलने का अधिकार है, उन मार्गों में कोई लुटेरा या बटमार न रहने पावे, वे हम सब के लिए कल्याणकर हों[1]।"

प्राचीन साहित्य में जिन कई प्रकार के मार्गों का उल्लेख हुआ है वे देश के विभिन्न भागों की भौगोलिक परिस्थितियों के लिए आवश्यक थे, जैसे स्थलपथ, जंगलपथ, कांतारपथ, वारिपथ, पेंढ़पथ (पहाड़ी पगडंडी)[2], अजपथ (अत्यंत संकरी पगडंडी जिस पर आपने-सामने से दो व्यक्ति एक साथ न निकल सकें), शंकुपथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(कठिन पहाड़ी मार्ग जहाँ खूँटियों के सहारे चढ़ा जाए), छत्रपथ (छाते से संतुलन रखकर चलने के रास्ते, झूले के पुल आदि), वेत्रपथ (जहाँ बेंत या लाठी से सम्हाल कर चलना आवश्यक हो), वेणुपथ (जहाँ एक किनारे के लंबे बाँसों को दूसरी ओर झुका कर नदी पार की जाए आदि)। अर्थ शास्त्र में उत्तरापथ और दक्षिणापथ नाम से मार्गों के दो मोटे विभाग किए हैं और फिर उनके प्रकार बताए हैं, जैसे राजमार्ग (मुख्य मार्ग), स्थानीयपथ (विभिन्न राजधानियों को मिलानेवाले), द्रोणमुखपथ (जलथल दोनों के व्यापार केंद्र) राष्ट्रपथ (गाँवों को जानेवाले मार्ग), विवीतपथ (गोचर भूमियों के मार्ग) एवं व्यूह पथ (सैनिक मार्ग), हस्तिपथ, रथपथ, मनुष्यपथ, चक्रपथ आदि।

यद्यपि हिमालय पर्वत और दक्षिण के समुद्र भारतवर्ष को अन्य देशों से अलग करते हैं, परंतु उन्हीं के रास्तों से इस देश का दूसरे देशों से संबंध भी स्थापति होता है। हिमालय की लंबी प्रचीर में पूर्व से उत्तर-पश्चिम तक कितने ही द्वार या दर्रे प्रकृति ने बनाए हैं। पूर्व में चीन और भारत को मिलाने वाला स्थलमार्ग ब्रह्मपुत्र-लौहित्य के पार जाता था। सिखिम के जरिए तिब्बत जाने का रास्ता था। कुमायूँ और तिब्बत के लीपूलेख दर्रे में होकर कैलास मानसरोवर और गढ़वाल के माणीनीती के घाटों से पश्चिमी तिब्बत में घुसने के मार्ग थे। एक मार्ग रामपुर-वशहर (प्रचीन किन्नर प्रदेश) में होकर सतलुज नदी के किनारे तिब्बत में जा मिलता था। परंतु इन सबसे अधिक सुलभ और सभ्यता के निर्माण में सहायक उत्तर-पश्चिम के मार्ग थे। इन मार्गों के दो प्रधान गुच्छे थे, एक उत्तर में वंक्षुनदी से वाल्हीक और कपिशा होता गंधार में घुस कर उद्भांड में सिंधु नदी पार करके तक्षशिला से मिलता था। दूसरा रास्ता दक्षिणी अफगानिस्तान में कंधार से क्वेटा की ओर खुल कर वोलन दर्रे के इस पार सीवी होता हुआ सिंधु नदी पर उतरता था। इसी की एक शाखा मूला नदी के मार्ग से बलूचिस्तान के मुख्य शहर वेला की ओर चली जाती थी। सीवी का पुराना नाम वसाति था। महाभारत में वसाति और मूला की दून में रहने वाले मौलेयों का एक साथ नाम आया है (वसातयः समौलेयाः, सभा. 51/15)। इन दो मार्ग गुच्छाकों के बीच में दो पतले पथ और थे एक कुर्रम (वैदिक क्रुमु) टोची नदियों के सहारे था जिसका प्राचीन नाम वर्णु पथ था। अर्वाचीन बन्नू उसी का स्मारक है। उशीनर देश (झंग मघियाना) से सिंध-सागर द्वाव के जलते हुए रेगिस्तान को पार करके यह रास्ता वन्नू की ओर जाता था। वंण्णु पथ जातक से मालूम होता है कि पूर्व की ओर से आनेवाले व्यापारियों को कभी-कभी कितनी तकलीफें उठानी पड़ती थीं। इसके दक्षिण में दूसरा मार्ग गोमल (वैदिक गोमती) की तरफ से सिंधु पर उतरता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रदेश का प्राचीन नाम वनायु जनपद था जिसे आज वाना कहते हैं।

भारतीय इतिहास के निर्माण में इस मार्गों का बहुत प्रभाव पड़ा है। आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तर का रास्ता था। गंधार से मध्य देश को मिलाने वाला यह राजमार्ग उपनिषदों से पहले ही खुल चुका था। उद्दालक आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि यदि किसी मनुष्य की आँख पर पट्टी बाँध कर उसे गंधार से यहाँ (पंचाल में) लाकर छोड़ दिया जाए और फिर पट्टी खोल कर उससे कहा जाए 'इस दिशा में गंधार है, इस तरफ तुम जाओ', तो वह चतुर आदमी गाँव-गाँव होकर मार्ग पूछता हुआ अवश्य गंधार पहुँच जाएगा (छांदोग्य. 6/14/1/2)। पाणिनि ने इस रास्ते का पुराना नाम उत्तरपथ लिखा है[3]। यह मार्ग इतना व्यवस्थित था कि भारतवर्ष में आने पर मैगस्थनीज के मन पर पहली छाप इसी राजमार्ग की पड़ी। यूनानी लेखकों ने उत्तरपथ का ठीक अनुवाद करते हुए इसे 'नारदर्न रूट' कहा है और उत्तर-पश्चिम से पूर्व तक इसके आठ भागों का उल्लेख किया है। पुष्कलावती से तक्षशिला फिर जेहलम पार करके व्यास तक, पुनः व्यास से सतलुज, सतलुज से यमुना, और वहाँ से गंगा के किनारे हस्तिनापुर, वहाँ से कान्यकुब्ज, कन्नौज से प्रयाग और प्रयाग से पाटलीपुत्र, वहाँ से भागीरथी के किनारे ताम्रलिप्ति तक यह मार्ग जाता था। हर कोस पर दूरी के सूचक पत्थर लगे थे। इस प्रकार भारतीय यातायात की यह बड़ी नाड़ी प्राचीन महान् जनपदों की राजधानियों (पुष्कलावती, तक्षशिला, शाकल, हस्तिनापुर, प्रयाग, पाटलिपुत्र) को मिलाती थी। इसे हम भारतीय इतिहास में उसकी सुरक्षा की राखी कह सकते हैं। जब तक यह राजमार्ग सुरक्षित रहा पश्चिम के साथ भारत की राजनैतिक और व्यापारिक स्थिति सुदृढ़ रही। चंद्रगुप्त मौर्य और अशोक ने एवं गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य और स्कंदगुप्त ने उत्तर पथ की भलीभाँति रक्षा की थी। पुष्कलावती के उस पार वंक्षु तक यह मार्ग बढ़ा हुआ था और पूर्व से आनेवाले चीनी कौशेय पथों को लेकर पश्चिम की ओर बढ़ जाता था। भारतवर्ष के भीतरी प्रदेश भी एक दूसरे के साथ वणिक पथों से मिले हुए थे। एक मार्ग श्रावस्ती से साकेत और कौशम्बी होकर शोण के उपरले कोठे में होता हुआ दक्षिण कोशल की ओर आता था। भरहुत का स्तूप इसी मार्ग पर था। दूसरा मार्ग मथुरा से अवंती और भरुकच्छ को मिलाता था एवं अवंती से प्रतिष्ठान तक जाता था। द्वारका, प्रभास शूर्पारक, गोकर्ण और कन्याकुमारी को मिलाने वाले समुद्री मार्ग का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसी प्रकार पूर्वी समुद्र तट पर भी नागपत्तन, कावेरीपत्तन, मसुलीपत्तन, विशाखापत्तन आदि थे। इन पत्तनों पर किसी समय द्वीपांतरों से व्यापारिक सामान उतरता था और यहाँ से भारतीय पोत अपनी यात्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर निकलते थे। पूर्वी द्वीप समूह में भारतीय संस्कृति के प्रसार के केंद्र चोल मंडल, कलिंग और ताम्रलिप्ति के पोतपत्तन या जलपत्तन थे। इन केद्रों को मिलाने वाला तट का अनुवर्ती मार्ग कूल पथ और बीच समुद्र का मार्ग संयान पथ कहलता था।

आर्थिक वस्तुओं के आदान-प्रदान द्वारा देश के दो दूरस्थ प्रदेश भी एक दूसरे को जान लेते थे। उदाहरण के लिए जातकों के युग में काशी और शिवि जनपद के मूल्यवान् वस्त्रों का नाम चारों ओर फैल गया था। जातकों के अनुसार स्वात के काँठे में बने हुए चटकीले लाल किनारों वाले कंबल फौजी इस्तेमाल के लिए उत्तर भारत में लाए जाते थे जिन्हें पांडु कंबल कहते थे (इंद्रगोपकवर्णाभा गंधारा पांडुकंबला)। इनका उल्लेख पाणिनि ने भी किया है। पांड्य देश के मोती और दक्षिण के मणिजड़ित चीर उत्तर भारत में प्रसिद्ध थे। आर्थिक एकता का बहुत अच्छा चित्र महाभारत के सभापर्व में आया है, जहाँ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में देश-देश के राजा अपने-अपने स्थान की अच्छी वस्तुएँ भेंट में लेकर इंद्रप्रस्थ में इकट्ठे हुए। हिमालय और हिंदूकुश पर्वतों से बर्बर जातियों के राजा लोग वहाँ आए। पूर्व भारत के संथाल (शाणवस्तयः) शवर और किरात भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुए। पंजाब तथा भारत के अन्य प्रांतों के पुराने राजवंश अपने साथ घोड़े, हाथी, शाल इत्यादि बहुमूल्य सामग्री युधिष्ठिर को भेंट करने के लिए लाए। कंबोज (पामीर बदख्शा) के राजा तित्तिरकल्माष (गुलदार) घोड़े, तीन सौ ऊँट और खच्चर, भेड़ की ऊन के वस्त्र और समूर जिन पर सोने का काम बना था, कंबल और पोस्तीन के वस्त्र युधिष्ठिर की सेवा में लाए। कार्पासिक (संभवतः कपिशा काफरिस्तान) देश के लोग अपने साथ तीन हजार सुंदर दासियाँ जिनका रंग दमकता था और जिनके घने केश लहराते थे, वकरों के चमड़े तथा मृगचर्म लाए। भरुकच्छ के लोग गंधार देश में उत्पन्न घोड़ों की भेंट लेकर उपस्थित हुए। सिंध बलूचिस्तान में रहने वाली जातियाँ जैसे वैराम (रम्बकिय), पारद, बंग (बलूचिस्तान की लंग जाति) कितब (केज मकरान के निवासी) गौ, सुवर्ण भेड़, बकरी, घोड़े, गधे और अंगूर की शराब (फलजमघु) एवं तरह-तरह के कंबल लाए। प्राग्ज्योतिष का राजा यशव (यशब (अश्मसारमय भांड) के बर्तन और हाथी दाँत की मूठ वाली तलवारें लाया। एक पाद कबीले के लोग लाल, हरे काले, इंद्रधनुष के रंग के जंगलों से पकड़े हुए बहुत तेज घोड़े और बहुत सा सोना लाए। चीन, हूण, शक, ओड, (उड्डियान, स्वातघाटी का प्राचीन नाम), पर्वताश्रयी (अफ़गानिस्तान के हिंदूकुश पहाड़ में रहनेवाले) और हारहूर (दक्षिणी अफगानिस्तान में सरस्वती या हरह्वैती नदी के प्रदेश के कबीले) लोगों ने अपने देश की कला कौशल की सामग्री युधिष्ठिर को भेंट की। उसमें काले रंग के कद्दावर दस हजार जंगली गधे थे जो एक दिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में सौ कोस जा सकते थे। उनकी भेंट में बाल्हीक तथा चीन के बने वस्त्र भी जो ठीक नाप के अच्छे रंगोवाले और खूब मुलायत (स्पर्शाढ्य) थे। इनमें ऊन के बने वस्त्र (औण्), रंकु बकरों के रोयों से बने पशमीने (राँवक, पामीर के रंकु नामक बकरे का पशम बहुत मुलायम होता है), रेशमी वस्त्र (कीटज) और पटाम्बर (पट्टज) एवं तरह-तरह के नमदे (कुट्टीकृतवस्त्र) और कमल के रंगवाले मुलायम ऊनी वस्त्र और मेमनों की खालें (पोस्तीन, अधिक अजिन) भी शामिल थीं। इन लोगों की भेंट में अनेक तरह के रस, सुगंधित पदार्थ, रत्न, तेज तलवारें, शक्तियाँ और अपरांत के बने हुए तेज फरसे थे। शक, तुखार (यूची जाति के लोग), कंक (चीनी इतिहास के कंगुलोग जो कंकु या सुग्ध बुखारा के उत्तर पश्चिम में थे) और लोमश एवं शृंगी (शक जातियों के नाम) लोग असंख्य घोड़े और सुवर्ण की राशि लाए। पूर्व भारत के राजा मणि कांचन और हाथी दाँत का काम किए हुए बहुमूल्य आसन, यान और शय्या लाए। इनकी भेंट में सोने से जड़े हुए और बाघ के चमड़े से मढ़े हुए बहुत से वैयाघ्र रथ थे जिनमें सधे हुए घोड़े जुते थे और नाराच, अर्धनाराच वाण, अनेक हथियार और बहुत तरह की झूलें थीं। कुणिंद (यमनु की उपरली धारा का पहाड़ी प्रदेश) तंगण (उत्तरी गढ़वाल) और परतंगण लोग पिपीलिक[1] नामक रवेदार सोना, हिमालय का स्वादिष्ट शहद और काले तथा सफेद बालों से बने हुए चमर लाए। उत्तरकुरु प्रदेश से पानी के जैसे हरे रंग के यशव से बनी हुई मालाएँ और कैलाश के उत्तर से वृष्य जड़ी बूटियाँ लाई गईं। पूर्व में बारीसाल के समुद्रतट के निवासी एवं लोहित्य के तटवासी खाल पहनने वाले किरात लोग जो भेंट लाए उनमें चंदन, अगरु, कालेयक, चमड़े, रत्न, सुवर्ण और दूरदेशों के पशुपक्षी थे। उनकी भेंट में किराती दासियाँ भी थीं। पुंड्रवर्धन, बंग, कलिंग और ताम्रलिप्ति के राजा दुकूल, रेशमी वस्त्र, पटोरे (एक तरह के रेशम के वस्त्र पत्रोर्ण) और चादरें (प्राचार) लाए। काम्यक सर (उड़ीसा की चिल्का झील) के राजा ने कीमती झूलों से ढके हुए सुनहली पट्टियों से सजे हुए दस सहस्त्र कुलीन हाथी दिए। शूकर (संभवतः शबर लोग) राजाओं ने भी बहुत से गजरत्न भेंट में दिए। गंधर्व या गंधारदेश के राजा सोने के गंडों से सुसज्जित हरियाले रंग के चार सौ घोड़े देने के लिए लाए। सिंहल देश के राजा वैडूर्य (लहसुनिया रत्न), मोती, शंख और तरह-तरह के कालीन भेंट में लेकर उपस्थित हुए। उनके साथ मणिचीर पहने हुए साँवले रंग के पार्श्वचर जिनकी आँखों के कोए ताम्रवर्ण थे उपायन की सामग्री लेकर चल रहे थे।

महाभारत का यह चित्र आर्थिक क्षेत्र में देश भर में फैले हुए डोरों का सूचक है। इसमें भी प्राचीन भारतीय भूगोल का क्षितिज वही है जिसका उल्लेख पिछले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्यायों में हुआ है, अर्थात् कंबोज (पामीर, बलूचिस्तान, कानरूप और बंग एवं पांड्य और सिंहल तक देश की दिक् सीमा का विस्तार था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (चौथी सदी ई.पू.) में भी इस व्यापार की कुछ झलक मिलती है। उस समय राजकोष में अनेक प्रकार की सामग्री आती थी। उसका उल्लेख करते हुए कहा गया कि मोती ताम्रपर्णी (सिंगल), पांड्यकवाट, महेंद्र पर्वत (गंजल जिला) से लाए जाते थे। कुछ रत्न समुद्रपार से एवं मूला नदी के आसपास से आते थे। हीरे सभाराष्ट्र (विदर्भ), मध्यराष्ट्र (दक्षिण कोशल), इन्द्रवान् (कलिंग) में होते थे। चन्दन जोंगक (असम), देवसभा (देवास) से, बिसी और महबिसी नाम की खालें हिमालय के उस पार म्लेच्छ देशों से, सामूर, चीनसी और सामूली नामक खालें वाल्हीक से, और सातिन नलतूल तथा वृत्तपुच्छ नाम के चर्म उड्डियान देश से लाए जाते थे। इसके अतिरिक्त नेपाल के थुलमे, बंग (मध्यबंगाल) के दुकूल, पुंड्र, (उत्तरी बंगाल) के क्षौम और सुवर्ण कुड्य (पश्चिमी बंगाल) के पटोर (पत्रोर्ण) प्रसिद्ध थे। मदुरा, कोंकण, कलिंग, काशी, बंग, वत्स (कौशांबी) और महिष (दक्षिण हैदराबाद) के सूतीवस्त्री बहुत अच्छे समझे जाते थे। कलिंग देश का कसौटी पत्थर अति श्रेष्ठ होता है।

स्थान नाम से वस्तुओं के प्रसिद्ध होने का एक अच्छा उदाहरण अमरकोश में पाया जाता है। वहाँ कालीमिर्च को मरीच, कोलक और धर्मपत्तन (2/9/36) कहा गया है। धर्मपत्तन मलयद्वीप के पूर्वी किनारे पर एक नागर था जिसे धर्मराष्ट्र नगर भी कहते थे (नखोन् सिरी धम्मराट्, वर्तमान लिगोर)। वहाँ से मसालों के साथ मिर्च का चालान होकर वह माल कोलक में उतरता था जो कावेरी के मुहाने पर सुप्रसिद्ध कोलकै नाम जलपत्तन था।

वाणिज्य और उद्योग धंधे का आर्थिक गठन भी मौलिक समानता पर आश्रित था। उदारहण के लिए नापतोल, सिक्के, सार्थवाह व्यापारियों के संगठन (निगम) एवं पेशेवर लोगों की संस्थाएँ (श्रेणी) इनके प्रकार और नियम सुसंबद्ध और निश्चित थे। एक स्थान के व्यापारी दूसरे प्रदेश की परिभाषाओं को जानते थे। जिससे आपस में व्यापारिक आदान-प्रदान भली प्रकार चलता था। पुरानी कथाओं में सार्थवाहों के पाटलिपुत्र से तक्षशिला, चंपा से ताम्रलिप्ति, श्रावस्ती से भरुकच्छ, मथुरा से दक्षिण मधुरा (मदुरा) तक माल लाद कर जाने का वर्णन आता है। शूर्पारक (वर्तमान सुपारा) में 500 बड़े नैगम व्यापारी थे। निगम स्थानीय सराफे का नाम था। जो व्यापारी इसके सदस्य थे वे नैगम कहलाते थे। ऐसे लोगों की साख होती थी। दूर-दूर के व्यापारिक केंद्रों में उनकी कोठियाँ थीं और उनकी हुंडियाँ चलती थीं। निगम व्यापारियों का प्रधान श्रेष्ठी या महाश्रेष्ठी कहलाता था। इस प्रकार की निगम संस्थाएँ, पाटलिपुत्र, चंमा, काशी, श्रावस्ती, अयोध्या, मथुरा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विदिशा, उज्जयिनी, प्रतिष्ठान, शूर्पारक, भरुकच्छ आदि बड़े-बड़े व्यापार केंद्रों में बहुत ही समृद्ध अवस्था में थीं। कई स्थानों से निगमों की मोहरें मिली हैं, जैसे काशी के पास राजघाट की खुदाई में। सराफा और हुंडी के अत्यंत विश्वसनीय संगठन प्रायः अठारहवीं शती के अन्त तक जीवित अवस्था में थे। व्यापारी अपनी व्यवसाय बुद्धि, सच्चाई और कार्यकुशलता से भौतिक जीवन मे जो मेल मिलाप के स्रोत उत्पन्न करते हैं वे अन्य प्रकार से संभव नहीं होत। वे लोग संस्कृति के अग्रदूत होते हैं और अपरिचित क्षेत्रों में भी अपने प्रांत, देश और भूमि की जय पताका पहले पहुँच कर स्थापित करते हैं। अवश्य ही महाजनपद युग से लेकर गुप्तकाल तक लगभग एक सहस्र वर्षों के समय में भारतीय सार्थवाह, नैगम, वाणिज्य साँयात्रिक (साझे में जहाज लादने वाले) और सम्भूय समुत्थान व्यापारियों ने न केवल स्वदेश में बल्कि वैदेशिक व्यापार के क्षेत्र में भी लहलहाते व्यापार की नींव डाली और अपने सत्य एवं उद्यम के आधार पर उसे यशस्वी बनाया। रोम, अरब, पारसीक, बाल्हीक सिंहल और भारतीय द्वीप समूह (हिंदेशिय) के साथ भारतीय व्यापार के मूल्यवान् ऐतिहासिक प्रमाण अभी तक उपलब्ध है। पारसकूल के साथ भारतीय लोग शंख, चन्दन, अगरु, मंजीठ सोना, चाँदी, रत्न, मोती, मूंगा इन वस्तुओं का व्यापार करते थे। व्यापारी लोग माल की गाँठों पर अपनी मोहर लगाकर भेजते थे। इस तरह की कई हजार मोहरें पुरातत्त्व की खुदाई में मिल चुकी हैं। जिन स्थानों में मोहरें तोड़ कर गाँठें खोली जाती थीं उन्हें 'पुटभेदन' कहते थे। इससे इतना स्पष्ट सूचित होता है कि व्यापार के कुछ सर्वमान्य नियम और समझौते थे जिनका सर्वत्र सचाई से पालन किया जाता था।

स्पष्ट है कि इस व्यपापार का आधार प्रमाणित नापतोल और सिक्कों के व्यवहार पर आश्रित था। कौटिल्य ने लिखा है कि तोलने के बाट लोहे अथवा पत्थर के होने चाहिएं जो जल के स्पर्श से घट बढ़ न सकें। पत्थर भी अच्छी किस्म का मगध या मेकला (विन्ध्याचल का पूर्वी भाग) पहाड़ों का होना चाहिए। तराजू लोहे की होनी चाहिए। मोटे तौर पर देश में दो मान चालू थे, मागधमान और कालिंगमान। कहा जाता है कि नन्द राजाओं ने जब उत्तर भारत में पहली बार बड़ा साम्राज्य बनाया तो उन्हें नापतोल की प्रामाणिक व्यवस्था करना आवश्यक ज्ञात हुआ1। वही 'मागधमान' कहलाया। लेकिन कलिंग में उनका पूरी तरह अधिकार न होने से वहाँ के लोग अपनी अलग नाप तोल मानते रहे।

व्यापारी वर्ग के समान उद्योग-धंधा करने वाले कलाकौशल की वस्तुएँ बनाने वाले पेशेवर लोगों के भी संगठन थे जिन्हें 'श्रेणी'[6] कहते थे। प्राचीन साहित्य में 18 प्रकार की श्रेणियों के नाम आते हैं, जैसे—कुम्भकार, पटेल, सुवर्णकार, सूपकार,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गन्धकार, नाई (कासवग), माली (मालाकार), काछी, तम्बोली, चर्मकार, तेली (जंतपालग) बुनकर (गछिय), छीपी (छिल्पाय) कसेरे (कंसकार), दर्जी (सीवग), ग्वाले (गुआर), भील और धीवर। इस सूची में नाम घट बढ़ सकते थे किंतु मुख्य बात यह है कि श्रेणियों के निश्चत नियम थे, जिन्हें राज की ओर से भी मान्य समझा जाता था। मनु ने लिखा है 'धर्म वित् राजा को चाहिए कि जातिधर्म, जानपदधर्म, कुलधर्म और श्रेणीधर्म अर्थात् इन-इन संस्थाओं के रीतिरिवाओं की भली प्रकार छान-बीन करके उनसे अविरुद्ध अपने राजकीय नियम और कानूनों की स्थापना करे[7]।'

श्रेणी प्रभावशालिनी संस्थाएँ थीं। अपने सदस्यों में वे न्याय का निपटारा भी करती थीं। नारद, बृहस्पति और याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियाँ श्रेणी को व्यवहार निर्णय का अधिकार देती हैं, जो राजमान्य होता था। श्रेणियों में नौसिखियों के लिये बाकायदा नियम थे। देश में सर्वत्र श्रेणियों की प्रतिष्ठा थी। उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत समझी जाती थी। नासिक और मथुरा से मिले हुए अभिलेख बताते हैं कि राजा लोग भी श्रेणियों के पास धर्मार्थ दिया हुआ मूलधन जमा करा देते थे, जिसके ब्याज से सार्वजनिक पुण्य का कार्य किया जाता था। श्रेणियों का यह कार्य बैंक जैसा था। नहपान के जामाता उषवदात ने नासिक में दो कोलियों की श्रेणियों में तीन हजार कार्षापण जमा किए जिसके ब्याज से भिक्षुओं के लिए चीवर और कुछ साग सब्जी का प्रबंध किया जाता था[8]। हुविष्क के एक उच्च अधिकारी ने मथुरा में पुण्शाला का निर्माण करा कर सदावर्त के व्यय के लिए 1100 रुपए (पुराण कार्षापण) की अक्षय नीवि दो श्रेणियों में जमी की। मथुरा और नासिक एक दूसरे से काफी दूर हैं और वहाँ के राज्य भी अलग थे, किंतु ऊपर के लेखों में दोनों जगह चाँदी के कार्पाषण सिक्कों के दान का उल्लेख है। एक तरह के सिक्के आर्थिक संगठन की एकता को प्रकट करते हैं। वस्तुतः चंद्रगुप्त मौर्य और अशोक के समय में बत्तीस रत्ती तोल का चाँदी का कार्षापण सिक्का राज्य भर में चालू था। इस तरह के सिक्कों के ढेर अफगानिस्तान से लेकर मैसूर तक पाए गए हैं। उनकी तोल और मूल्य एक से हैं और उन पर बने हुए चिह्नों[9] में भी घनिष्ठ एकता है, जैसा कि उनके विशेष अध्ययन से ज्ञात हुआ है। यह ठीक है कि मौर्यकाल से पहले और उसके बाद और भी अनेक प्रकार के सिक्के ढाले गए, लेकिन उनकी तोल और मूल्य का आधार एक सर्वसम्मत व्यवस्था थी। राज्यों के बदल जाने पर भी उनके जारी किए हुए सिक्के चालू रहते थे और व्यापारी लोग बाजार में नए-नए सिक्कों के साथ उनके मोल और तोल का हिसाब लगा लेते थे। इस प्रकार नन्द राजाओं के समय (पाँचवीं सदी ई.पू.) में चालू की हुई मुद्राएँ कुषाण और गुप्तकाल में भी चलती रहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक दूसरा उदाहरण अलाउद्दीन खिलजी के समय का है। दिल्ली की टकसाल के अध्यक्ष ठाकुर फेरू ने लिखा है कि गुर्जर प्रतिहारवंशी भोज (9 वीं सदी) के आदिवराह द्रम्म और नवीं से बारहवीं सदी तक के सैकड़ों और प्रकार के अन्य राजाओं के सिक्के दिल्ली की टकसाल में आते थे। इसमें आबू, देवगिरी, वाराणसी, गुजरात, मालवा, चंदेरी की मुद्राएँ और अलाउद्दीन से पहले के दिल्ली के सुल्तानों के भी अनेक सिक्कों के नाम आए हैं। इसका एक सुफल यह था कि राज्य बदलते रहते थे, किंतु आर्थिक ढाँचा स्थिर रहता था और आर्थिक क्षेत्र में व्यापारी लोग आपसी लेन-देन के समय छोटे-छोटे राज्यों की सीमाओं को बाधक नहीं समझते थें सत्य तो यह है कि न केवल आर्थिक क्षेत्र में वरन् जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी इतिहास के प्रत्येक युग में संस्कृति का ढाँचा और व्यवस्था भिन्न-भिन्न प्रांतों में एक-सी पाई जाती है। जिस प्रकार मौर्ययुग की कला, वेश-भूषा, साहित्यिक शैली और धार्मिक प्रवृत्तियाँ प्रांतीय भेदों से ऊपर सारे देश में एक जैसी देखी जाती हैं, वही सच्चाई आर्थिक क्षेत्र में भी थी। यही तथ्य गुप्त युग या मध्ययुग में भी सही है। राज्य के बटवारों से युग संस्कृति की एक रूपता में भेद नहीं देखा जाता।

संदर्भ

1. ये ते पंथानो वहवो जनायनां रथस्य वर्त्मानश्च यातवे। यैः संचरन्तयुभये भद्र पापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रतस्करं तच्छिवं तेन नो मृड। अथर्व 12/1/47
2. मेढ़ पथ से भी संकरी पगडंडी।
3. उत्तरपथेनाहृतं च, (5/1/77) उत्तरपथ से आने वाले व्यापारिक सामान कंबल घोड़े आदिक 'औत्तिर पथिक' कहलाते थे।
4. प्राचीन भारतवर्ष में इस सोने की विशेष प्रसिद्धि थी। हीरो दोत ने भी इस सुवर्ण का उल्लेख किया है। इसे सोना खोदने वाली 'चोटियों' से निकाला हुआ कहा गया है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में इस तरह की किंवदंतियाँ फैली हुई थीं। वास्तव में ये चींटियाँ नहीं वरन् समूर पहने हुए खानों मे काम करने वाले तिब्बती मजदूर थे।
5. व्याकरण में इस घटना का स्मारक एक उदाहरण बच गया है—नंदोपक्रमाणि मानानि।
6. एकेन शिल्पेन पण्येन वा ये जीवंति वेषां समूहः रेणी। (कैथ्यट 1/1/59)। मेघातिथि के अनुसार श्रेणयों नाना जातीनां एक जातीयकर्पा—....... सधातृाः (2/30)
7. जाति जानदान्धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्।
   समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मम् प्रतिपालयेत्॥ (मनु. 8/41)
   यहां धर्म का अर्थ समयाचारिक धर्म या रीतिरिवाज है।
8. नासिक गुफा अभिलेख एपिग्राफिया इंडिका 8/82
9. प्रत्येक सिक्के पर पाँच चिह्न बने हुए हैं जिन्हें संस्कृत में रूप और अंग्रेजी में सिंबल कहते हैं। ये सिक्के आहत कार्षापण कहलाते हैं। इनकी प्रामाणिक तोल 32 रत्ती की थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-7

जन

भारतभूमि पर रहने वाला जन अत्यंत विस्तृत है। इसके अंतर्गत हम उन समस्त मानव जातियों की गणना करते हैं जो यहाँ ही उत्पन्न हुईं या बाहर से आकर यहाँ बस गईं। इतिहास के महाकटाह में निरंतर कितनी ही जातियों का समावेश इस भूमि पर होता रहा है और संस्कृति की कोई अनिर्वचनीय क्षेमवती शक्ति उन जातियों को यथास्थान सुरक्षित रखकर भी उन्हें एकता के साँचे में ढालने का प्रयत्न करती रही है। यह प्राणवती महाशक्ति सहिष्णुता और समन्वय के श्वास-प्रश्वास की सहायता से अपना कार्य करती रही है। यह पूर्व युग में थी, आज भी है, आगे भी रहेगी। ऐसा विदित होता है कि भारतीय भूमि पर जन की स्थिति का अंतर्यामी सूत्र सभ्यता के उषःकाल में ही राष्ट्र निर्माताओं के ध्यान में आ गया था। उसके तेजस्वी स्वर जो निम्नलिखित मंत्र में प्रकट हुए स्थिर भाव से ऊँचे उठते चले गए और आज भी हम उनके कंपन का अनुभव करते हैं।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथ्वी यथौकसम्।

–(अर्थव. 12/1/45)

'मातृभूमि ध्रुव धेनु है, वह निश्चल भाव से खड़ी है। कितने ही प्रकार के जन, अपने-अपने स्थानों में बसे हुए, अपनी भाषा और धर्मों को मानते हुए पृथ्वी में सब ओर भरे हैं। मातृभूमि अपने अमृत तुल्य दूध की सहस्त्रों धाराएं सबको समान रूप से दे रही है।' यह मंत्र भारत की राष्ट्रीय संस्कृति का संविधान पत्र है, इसमें प्रत्येक के लिए रक्षा का संदेश है। भाषा, धर्म और जन की निजी विशेषताओं की रक्षा का यह शाश्वत अभय पत्र। यह तथ्य केवल पुस्तकों का विषय नहीं रहा किंतु लोक जीवन के रोम-रोम में बिंध गया। जन के प्रति सहिष्णुता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की यह भावना राष्ट्रीय जीवन के कल्याण की शीत वायु है। इसके झोंके सबको सुख पहुँचाते हैं।

प्रत्येक जन को उसकी विशेषताओं के साथ जीवित रहने की स्वतंत्रता होगी, उसकी भाषा की रक्षा होगी, धर्म की रक्षा होगी, रहने के लिए स्थान मिलेगा। इस प्रकार के अनेक वरदानों की छत्रछाया में पोषित हुआ जन भूमि के साथ माता और पुत्र के संबंध में बँध जाएगा। यही भारतीय जीवन की अति संक्षिप्त बारहखड़ी है।

भारतीय जन के विषय में विचार करते समय तीन मुख्य विशेषताएँ सामने आती हैं:—

1. विविध जातियों के उपादान जो भारतीय जन में सम्मिलित हैं।
2. उन जातीय उपादानों की इच्छानुसार अधिक से अधिक रक्षा।
3. मौलिक एकता या समग्रता की ओर उनकी प्रगति।

जब हम जन जीवन के उपादानों की विविधता की बात सोचते हैं तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। जनयज्ञ में जितनी भिन्न आहुतियाँ इस भारत भूमि में पड़ी हैं उतनी संसार के किसी अन्य देश में नहीं। कहाँ-कहाँ से कितनी तरह की मिट्टियाँ काली, साँवली, गोरी, गेहुआँ, पीली, भूरी आदि भारतीय जन के काय निर्माण में सन कर एक में मिली हैं। आर्य, द्रविड़, निषाद, किरात, शक, पल्हव, पारद, यवन, हूण, तुषार, कांबोज, चीन, यक्ष, खस, असुर, राक्षक, शबर, कोल, मुंडा, टोडा, भील, चेचुं, पुक्कस, नाग आदि अननिगत जातियाँ उपजातियाँ भारतीय जन में मिली हुई हैं। इतिहास उनके आवागमन रहन-सहन और घटने-बढ़ने की रोमांचकारी कथाएँ कहता है। हमारी समझ से ऋक्ष, वानर आदि शब्द भी जातिवाची थे जो आग्नेय या निषाद वंश की उपजातियों के नाम थे। ऋक्षवान् पर्वत (छोटा नागपुर की ओर विंध्याचल का पूर्वी भाग) का नामकरण ऋक्ष जाति के निवास स्थान का स्मारक है। ऋक्ष और वानरों की राम के साथ मैत्री निषाद जातियों का आर्यों के साथ सम्मिलिन प्रकट करती है। इसी प्रकार निषादवंशी राजा गुह का राम के साथ मैत्री संबंध भी है। किसी समय कोसल जनपद की सीमा तक निषाद जाति का विस्तार था। श्रृंगबेरपुर में गुह की राजधानी थी। वहीं उसने राम का स्वागत किया और उन्हें दक्षिणापथ की ओर बढ़ने में सहायता दी। आर्य संस्कृति के साथ निषाद संस्कृति के इस मेल का संस्कार आज तक लोक मानस में विद्यमान है। गोंडा, बहराइच, बस्ती आदि पूर्वी जिलों में काफी संख्या ऐसे लोगों की है जो अपने आप को निषाद कहते हैं और गुह को अपना पूर्वज मानकर उसकी पूजा करते हैं एवं इस समय हिंदू धर्म के अनुयायी हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस देश में आदिम जातियों के भंडार भरे हैं। और भी, कोई जाति ऐसी नहीं जिसमें भेद उपभेद न हों। असम, छोटा नागपुर, बस्तर दक्षिण हैदराबाद, मद्रास के पहाड़, जंगल और पठारों में इन मानवों के ठट्ट भरे हैं। सदा से यहाँ उनका निवास रहा है। आज राष्ट्रीय दृष्टि से उनके पार्थक्य की बात सोचना अनुचित है, किंतु इतिहास इस बात का साक्षी है कि आरंभ काल से ही हिंदूकरण पद्धति के दायरे में वे खिंच आए थे। वेदों में 'व्रात्यस्तोम' का उल्लेख आया है। व्रात्यों का जो वर्णन मिलता है उससे ज्ञात होता है कि ये लोग आर्य संस्कृति से बाहर लूट-मार करके जंगली जीवन व्यतीत करते थे[1]। पाणिनि से ज्ञात होता है कि व्रात लोग लूट-मार से जीविका निर्वाह करने वाले नाना जातियों के लोग थे[2]। इन लोगों के भी आपस में कुछ अविकसति राजनैतिक संगठन थे, जैसे कि सिंध के किनारे के कबाइली लोगों में पाए जाते हैं। उत्तरपश्चिमी भारत में संघ और गणों के जो प्रयोग हो रहे थे उससे नीचे स्तर पर ये प्रयोग भी थे। इसीलिए अष्टाध्यायी में यह बताने के लिए उनका उल्लेख हुआ है कि उनके नाम किस तरह रखे जाते थे, जैसे कपोतपाकाः।

जन के विविध जीवन की दूसरी विशेषता जो केवल भारतवर्ष में देखने में आती है वह यह है कि विभिन्न स्तरों पर ये जातियाँ समाज में अपना जीवन निर्वाह करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। प्रत्येक जाति आंतरिक स्वराज्य का उपभोग करती थी। यह उसकी इच्छा है कि वह अपने निजी जीवन की कौनसी विशेषता रखना चाहती है और कितना अंश वह दूसरों से लेना चाहती है। भाषा, धर्म, देवी देवता, विश्वास, सामाजिक संस्कार सब के विषय में हर एक समुदाय या वर्ग अपनी इच्छानुसार जीवन ढालने में स्वतंत्र था। किसी केंद्रीय शक्ति ने बलपूर्वक यदि जातीय जीवन को एक तरह के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया होता तो उसका नतीजा यही हो सकता था कि या तो ये समुदाय मार काट के द्वारा समाप्त हो जाते और या अपना सब कुछ भूल कर दूसरी जीवन पद्धति और संस्कृति अपनाने के लिए मजबूर होते। मानवी दृष्टि से ये दोनों बातें अवांछनीय हैं। किसी के धार्मिक विश्वास या संस्कृति का धरातल जैसा भी है, उसे अपने अस्तित्व की स्वतंत्रता है। इसी आधार पर भारतीय समाज रचना की नींव रखी गई। प्रत्येक जाति अपने क्षेत्र में आत्मतृप्त और अपनी संस्कृति की गोद में सुखी रहती है। उनकी इस स्थिति को स्वीकार करते हुए ही भारतीय संस्कृति ने अपने देशव्यापी प्रभाव के अंतर्गत उन्हें खींचा। यह प्रभाव अत्यंत गूढ़ और स्वाभाविक रीति से स्वतः सब पर पड़ने लगा। देश में राष्ट्रीय जन हजारों प्रकार से इस प्रभाव का अनुभव करता था। एक गंगाजी के मेले को लें। भूमि पर रहनेवाले जन का कोई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्ति ऐसा न होगा जो उस प्रभाव के खिंचाव का अनुभव न करता हो। पर्व, उत्सव, मेले, संस्कार कितने ही रूपों में संस्कृति की ये किरणें लोक मानस को भृंगी कीट की तरह अपने स्वरूप में ढालती हैं। यह प्रभाव एक दूसरे पर बड़े मधुर ढंग से पड़े हैं। न जाने कितनी बातें आर्यों ने द्राविड़ों से, द्राविड़ों ने आर्यों से एवं आर्य और द्राविड़ों न निषादों से, और निषादों ने इनसे ली हैं। कुलदेवता, ग्राम देवता, नगर और नदी देवताओं की आपस में ऐसी गड्डमड्ड हुई है कि अब वे समसत देश के बन गए हैं। जिसकी जैसी रुचि है वह उसे स्वीकार कर लेता है। जिस प्रकार वर्षा में नदी प्रतिवर्ष मिट्टी की तहें अपने तटों पर छोड़ती है उसी प्रकार युग-युगांतर के भीतर से विचारों के अनेक कोप भारतीय संस्कृति में संपुटित हुए हैं। आज उनकी पृथक्-पृथक् पहचान असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। संस्कृति की यह प्रभावशालिनी प्रक्रिया ही हिंदू धर्म की पद्धति है। इसका सबसे पूर्णरूप पौराणिक हिंदू धर्म है। वह एक बड़े जंगल की तरह है जिसमें छोटे तिनके से लेकर देवदारु के सौ-सौ फुट ऊँचे वृक्ष जगह छेके खड़े हैं। सब अपनी-अपनी चौपाल के चौधरी हैं, और हँस कर सूर्य का स्वागत करने के लिए स्वतंत्र हैं। एक वायु उन सबको झकझोरती है और एक ही मेघ की बूँदें उनके शरीर को पुष्ट करती हैं। सबके जीवन रस का स्रोत इसी भूमि में है। ऐसे ही जितने भी जन हैं उनकी सांस्कृतिक जड़ें इसी देश की भूमि के साथ जुड़ी हैं। तभी भूमि के साथ उनका आत्मीय संबंध पूरा और पक्का हो सकता है। कहते हैं कि यहाँ पहले निषाद मुंडा जाति का निवास था। कोल संथाल, मुंडा, शबर, हो, कोरुवा, खाड़िया, कुरक्, जोयांग आदि उनके अनेक भेद देश में आज भी आबाद हैं। निषाद वंश की ये जातियाँ दक्षिण पूर्व के भारतीय द्वीप समूह की जातियों से संबंधित थीं जिनका सिलसिला हिंद चीन, कंबोज, मेलेनेशिया और पोलीनेशिया के असंख्य द्वीपों में बसे हुए जन समूह तक चला गया था। जो हो आज ये जातियाँ भारतभूमि के अविभाज्य अंग हैं। उनकी भाषा और धर्म दोनों भारत की भूमि से बद्धमूल हैं। वस्तुतः निषाद वंश की भाषाओं ने आर्य भाषाओं के भंडार को अनेक शब्द प्रदान किए हैं और उनके धार्मिक विश्वासों से भी भारतीय धर्मों का ताना-बाना अधिक समृद्ध हुआ है। जीवन में जिन स्थूल वस्तुओं का भूमि से संबंध है, जैसे वृक्ष, वनस्पति-पहाड़, खाड खड्ड, पत्थर, मिट्टी, आवश्यक औजार और जंगली पशु आदि, इनके नामकरण में निषाद भाषाओं के शब्द आर्य भाषाओं में लिए गए होंगे। एक विद्वान[3] का कथन है कि गोदा नाम जो अब संस्कृत का जान पड़ता है, वह शवर भाषा का है। उस भाषा में गो का अर्थ बड़ा और डा का अर्थ पानी की चादर। गोडा का ही संस्कृत रूप गोदा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परलाकिमिडि से पेद्दकिमिडी तक फैला हुआ 150 मील लंबा और 100 मील चौड़ा फैला हुआ शवर जाति का हृद्देश है। इसके पश्चिम की सीमा आज भी शवरी नदी है जो गोदावरी में मिली है। उसी शवरी के पास ही बस्तर के मध्य से इंद्रवती नदी बही है। ज्ञात होता है कि शवरों के प्रदेश में जब आर्य उपनिवेश बने तब इंद्रवती यह नाम पड़ा होगा। वे अपने आपको 'सोअरा' कहते हैं। स्थानीय नामों में उनकी भाषा के अनेक शब्द सुरक्षित हैं। परलाकिमिडी नाम में परला तेलुगू भाषा का शब्द है जो गाँव का वाचक है, और शवर भाषा का किमिडी शृंखला (मिड्एक, डिआ कटिभाग), अर्थात् परलाग्राम की पर्वत शृंखला। भारतीय साहित्य में शावर मंत्रों का उल्लेख हुआ है। शिव की एक कल्पना शवरों के देवता के रूप में और पार्वती की शबरी के रूप में है। ये शवर धर्म और हिंदू धर्म के मेल के सूत्र हैं। शवर, मुंडा आदि जातियों के धार्मिक विश्वास मंत्र-तंत्र एवं भाषा और गीतों के वैज्ञानिक अध्ययन से इस अतीत इतिहास की कुछ कड़ियाँ अवश्य प्राप्त की जा सकेंगी। वैज्ञानिकों का विचार है कि आदिम वासियों की जो शाखाएँ हिंदूकरण पद्धति के अंतर्गत खिंच आईं उन्होंने स्वेच्छा से शव-निखात की प्रथा त्याग दी और अपनी परिवर्तित स्थिति की सूचक अग्निदाह की प्रथा स्वीकार कर ली। उत्तर और दक्खिन की कितनी ही जातियों में ऐसा हुआ।

भारतीय जन के अंतर्गत दूसरा बड़ा समुदाय द्राविड़ लोगों का है। द्रविड़ अथवा द्रमिड़ शब्द का ही रूप तमिल् है।इस समय दक्षिण भारत के द्राविड़ देश में तेलुगू, कन्नड़, तमिल और मलयाली भाषा बोलने वाले लोग आंध्र, कर्णाटक, तामिलनाडु (नाटु, प्राचीन तिमल शब्द=राष्ट्र) और केरल इन प्रदेशों में रहते हैं। भारतवर्ष के प्रायः एक पंचमाश लोग आज भी इन भाषाओं के बोलने वाले हैं ऐसा विश्वास है कि किसी समय द्राविड़ लोग उत्तर-पश्चिम भारत में एवं पश्चिम और मध्य भारत में भी प्रबल थे। गोंडी भाषा द्राविड़ परिवार की ही है, जो मध्य भारत और मध्य देश के भीतर भी किसी समय दूर तक फैली हुई थी। द्राविड़ों के आदि निवासस्थान के विषय में और उनकी आदि द्राविड़भाषा किस परिवार की थी, इस विषय में अभी संदेह है। एक अनुमान है कि द्राविड़ लोग पश्चिमी एशिया, संभवतः पूर्व भूमध्यसागर के अंचल से भारत की ओर आए। बलूचिस्तान में ईरानी आर्यभाषी बिलोच और पठान तथा भारतीय आर्यभाषी सिंधियों के बीच में अभी तक ब्राहुइ नामक एक जाति रहती है। इसकी 'ब्राहुइ' भाषा द्राविड़ परिवार की है। इससे यह अनुमान होता है कि एक समय आर्य भाषा के प्रसार से पूर्व बलूचिस्तान में और पास के सिंध प्रदेश में भी ब्राहुइ के समान द्राविड़ भाषा चलती थी। सहस्राब्दियों पूर्व वैदिक आर्यों और द्राविड़ों का अवश्य सम्पर्क हुआ और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके फलस्वरूप सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी हुआ। आर्यभाषाओं में मूर्द्धय ध्वनि का प्रचार प्राचीन काल में द्राविड़ भाषा के प्रभाव से ही हुआ जान पड़ता है। संस्कृत भाषा के अनेक शब्द मूल में द्राविड़ भाषा से उत्पन्न हुए हैं। खंड, आडंबर, तंडुल, फल, कपि, कटवी, अरविंद, कबरी, कवच, धम्मिल, कूट कुलत्थ, चपेट, कूर्पर, तट, कोट, चीर आदि शब्द द्राविड़ भाषाओं से आर्यभाषाओं में आ मिले हैं। किट्टल ने अपने कन्नड़ कोश की भूमिका में ऐसे लगभग 450 शब्दों पर विचार किया है[1]? संस्कृत और प्राकृत के इतिहास में ज्यों-ज्यों शताब्दियाँ बीतती गईं और दक्षिण तथा उत्तर का संपर्क बढ़ा विभिन्न युगों की आर्य भाषाओं में द्राविड़ शब्द गृहीत होते रहे एवं द्राविड़ भाषा में भी संस्कृत और आर्य शब्द खुल कर लिए गए। इस समय भाषाओं का यह समन्वय इस दर्जे पर पहुँच गया है कि मलयालम में लगभग 80 प्रतिशत, तेलुगू में 60 प्रतिशत, कन्नड़ में 50 प्रतिशत और तमिल में 30 प्रतिशत, शब्द संस्कृत भाषा के हैं। द्राविड़ परिवार में अन्य भाषाओं का साहित्य तो 1000 वर्ष पहले तक जाता है। सबसे प्राचीन तेलुगू पुस्तक नन्नयकृत महाभारत का आंशिक अनुवाद 11वीं सदी का है और प्राचीन कन्नड़ के कुछ लेख ईसा से पाँच सौ वर्ष बाद तक के हैं। किंतु तमिल भाषा का साहित्य लगभग ई. सन् के आरंभ का है जो अत्यंत विस्तृत, काव्य, नाटक, व्याकरण आदि बहुमुखी विषयों से युक्त, एवं उच्च संस्कृति का द्योतक है। इस साहित्य की अंतरात्मा शुद्ध भारतीय है। और पदे पदे भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता का प्रमाण देती है। सांस्कृतिक दृष्टि से उत्तर भारत और दक्षिण के काव्य दोनों की पृष्ठभूमि एक जैसी है। उदाहरण के लिए 'शिलप्पाधिकारम्' काव्य[2] के निम्नलिखित अंश में उत्तर और दक्षिण के सांस्कृतिक अभिप्राय बेरोक टोक एक दूसरे में मिले हुए हैं।

"एक विद्याधर ने अपनी प्रियतमा के साथ रजताद्रि कैलास पर मदनोत्सव मनाया। उसी समय उसे ध्यान आया कि दक्षिण भारत की पुहार नामक राजधानी में इसी समय इंद्रमह हो रहा है। उसने अपने स्त्री से कहा, "प्रिये, चलो पुहार का उत्सव देखें, जहाँ माहा भूतम् साक्षात् रूप में उस हवि का भक्षण करते हैं जो असुरों के वाणों से भयभीत इंद्रपुरी की रक्षा करने वाले पुरुषव्याघ्र मुचकुंद की सहायता करने के उपलक्ष्य में उसे दी जाती है। चलो वहाँ उन पाँच मंडपों को भी देखेंगे जिनका वास्तु सौंदर्य अद्भुत है, जो इंद्रप्रदत्त हैं और जिन्हें अमरावती के रक्षक मुचुकुंद के पूर्वजों ने पृथ्वी पर बनाया है।

अगस्त्य ने यह देखकर कि सहस्त्राक्ष इंद्र के समक्ष उर्वशी के नृत्य में नारद की वीणा ठीक नहीं बज रही, शाप दिया "परिवादिनी के सौभाग्य का अंत हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और नर्तकी पृथ्वी पर जन्म ले" उसी उर्वशी का अवतार माधवी है। चलो पुहार में उसका नृत्य देखें। हे विद्रुम के समान अधरवाली सुमध्यमा, वहाँ हम देवराज इंद्र की भी पूजा करेंगे।" यह कह कर वह अपनी प्रिया को हिमालय के शिखर, पर गंगा की धारा, उज्जयिनी पुरी, विंध्यावटी, तिरुपति पर्वत और सस्य संपत्ति से भरी हुई कावेरी की उपकंठ भूमि को दिखाता हुआ पुष्प निकुंजों वाली पुहार नगरी में आया। वहाँ उचित विधि से इंद्र की पूजा करके उसने अपनी प्रियतमा को पुहार के दर्शन कराए और फिर उस प्राचीन संपन्न राजधानी में सुखकर महोत्सव देखा। उसने कहा, "प्रिय पहले तुम विष्णु के सम्मान में देवपाणि संगीत सुनोगी फिर चार वर्णों से चार भूतों की पूजार्थ गाए हुए चार पद सुनोगी और फिर आकाशचारी चंद्र की स्तुति में पदगान सुनोगी। पीछे शिव के नृत्य देखना जिसमें उमा स्वयं ताल देती हैं।"

शिलप्पधिकारम् 6। पं. 1 40।

सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से द्राविड़ और आर्य इन दोनों का साहित्यिक,धार्मिक और दार्शनिक समन्वय इतना घनिष्ठ हो चुका था कि उनके किसी भी प्रकार अगल होने की कल्पना अर्वाचीन आंदोलन से पहले किसी के ध्यान में भी न थी। भारत के सांस्कृतिक चक्षु में जो देखने की शक्ति है उसका पूरा वरदान दक्षिणापथ और उत्तरपथ के निवासियों को मिला था। दक्षिण उत्तर के भेद या स्पर्धा का भारतीय मस्तिष्क में बिल्कुल अभाव है। सांस्कृतिक प्रगति के लिए दोनों एक ही रथ के दो पहिए हैं, अथवा एक ही प्राणवायु के दो नासिकाद्वार हैं। किसी पूर्व कल्प में उत्तर के अगस्त्य ऋषि विंध्याचल पार करके दक्षिणापथ में पहुँचे थे। दक्षिण ने उन्हें अगस्त्य गुरु के रूप में स्वीकार किया। एक प्रकार से इस कहानी में उत्तरापथ की संस्कृति के प्रति पूज्य बुद्धि का ही कथन है। नए प्रकार की राष्ट्रीय चेतना से पहले जो धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना थी उसमें देश की एकता के लिए जितना कार्य संसिद्ध हो चुका था उसे आग बढ़ाने की आवश्यकता है, न कि पीछे हटाने की।

हिंदू सभ्यता मुख्यतः वैदिक आर्यों की सृष्टि है। इस संस्कृति में जो कुछ श्रेष्ठ सुंदर साधु सत् और शाश्वत है वह प्रायः आर्य जाति का दान है। यद्यपि मूल में आर्य जाति का संबंध वैदिक साहित्य से था, किंतु इस समय उपलब्ध समस्त हिंदू साहित्य उन्हीं की विचारधारा से अनुप्राणित हुआ है। उसमें जो अनेक अंश लोक जीवन और लोक संस्कृति से आए हैं आज वे सब मिलकर उस गंगा की धारा के तुल्य बन चुके हैं कि जिसमें एक-एक गाँव से बहकर आता हुआ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जल एक रूप हो जाता है और गंगा यही नाम शेष रहता है। गंगा का समग्र रूप मंगल्य और मनोहर है। उसमें खंड या भेद नहीं। हाँ, उसके तटों पर छोटे बड़े अनेक तीर्थ हैं। ऐसे ही भारतीय संस्कृति में धर्म और दर्शन के अनेक प्रयोग हैं। उपनिषदों का ब्रह्मचैतन्यवाद एवं नदी देवता और वृक्ष देवताओं की देहातों में फैली हुई जनश्रद्धा—इनके बीच में विचारों के अनेक स्तर हैं। समन्वय की दृष्टि से यही कहा जाता है कि रुचियों के भेद से वे सभी उपयोगी हैं। जिस प्रकार अनेक पगडंडियाँ एक चोटी पर ले जाती हैं, उसी प्रकार सांस्कृतिक विचारों के ये अनेक मार्ग हैं। जैसे भारतीय जन में कुछ भी त्यागने योग्य नहीं है, सभी राष्ट्र के अंग हैं, वैसे ही जनता के धार्मिक विश्वासों के प्रति विग्रह बुद्धि न रख कर हमें सहिष्णु दृष्टिकोण अपनाना होगा।

भिन्न विचारधारा के लोगों को एक धार्मिक धारा के साथ संतुलित करके उनके मन को एकता की ओर मोड़ने की परिपाटी पूर्व युग में थी। इस उपाय से अनेक आचार्यों ने बाहर से आनेवाले शक, यवन, तुषार, हूण आदि विदेशी जनों को उन्मुक्त हृदय से भारत समाज और धर्म में स्थान दिया। लगभग पहली दूसरी सदी ई. पूर्व में भागवत धर्म का यह दृष्टिकोण बहुत उदार और शक्तिशाली हो गया था। हेलियोदार नामक यवन राजदूत ने भागवत धर्म स्वीकार किया और वेसनगर में देवदेव वासुदेव के लिए गरुड़ध्वज की स्थापना की। इस लेख के अंत में कहा गया है—

"तीन अमृत के पद हैं जिनका ठीक अनुष्ठान स्वर्ग का मार्ग बनाता है—दम, त्याग और अप्रमाद।"

महाभारत में भी कहा गया है:—

दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम्। (5/43)

मथुरा में महाक्षत्रप शोडाश ने भी इसी प्रकार भागवत धर्म के प्रति आस्था प्रकट की थी। इस समय भारतीय संस्कृति में नए आगंतुक जनों का निर्बाध प्रवेश हो रहा था। उनके लिए समाज में एक नए चौड़े रास्ते की आवश्यकता थी जो भागवत धर्म और बौद्धों के महायान धर्म के रूप में सामने आया। घट-घटव्यापी विष्णु के रूप में ईश्वर का धर्म में प्रचार किया गया और संस्कृति का मार्ग सबके लिए खोल दिया गया। भागवत का निम्नलिखित श्लोक उस समय के सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण की प्राणमयी व्याख्या है—

किरातहूणान्ध्रपुन्दि पुक्कसा आमीरवंका यवना खसादयः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये न्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रया शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥
–(भागवत् 2/4/18)

इस संबंध में मातृभूमि के प्रत्येक पुत्र को सदा यह सत्य स्मरण रखना चाहिए जिसका बहुत पहले ही यहाँ अनुभव कर लिया गया थाः–

भूमिरावपनं महत्
'मातृभूमि वह बड़ा थैला है जिसमें सबके लिए स्थान है।'

देश के भीतर ही कितनी ही जातियों के एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर बसने का उल्लेख है। पंजाब के वीर मालव जिन्होंने सिकंदर से लोहा लिया था तीसरी सदी ई. पू. के लगभग अपने स्थान से उठकर उत्तरी राजपूताने में होते हुए जयपुर के दक्षिण ककोर्ट नगर में आ बसे थे जहाँ उनके बहुत से सिक्के मिले हैं। कालांतर में वहाँ से आगे बढ़कर कोटा होते हुए गुप्तकाल से कुछ पहले वे अवंति के चारों ओर आ बसे और तभी से यह प्रदेश मालवा कहलाया। इसी प्रकार उशीनर (झंग मधियाना) के निवासी शिवि उदयपुर चित्तौड़ के समीप मध्यमिका में आ बसे, जहाँ उनके शिलालेख मिले हैं। दक्षिण पूर्वी पंजाब में हिसार जिले के अगरोहा (प्राचीन अग्रोदक) केंद्र से अग्रवाल जाति युक्तप्रांत और राजस्थान में फैल गई और नए-नए प्रदेशों में बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से बस गई। पृथ्वी सूक्त की कल्पना के अनुसार जिस प्रकार घोड़ा अपने शरीर की धूल चारों ओर झाड़ता है उस प्रकार जन भी भूमि पर फैले। मध्यकालीन शिलालेख इस प्रकार के उल्लेखों से भरे हैं कि एक स्थान के ब्राह्मण अन्यत्र जाकर संन्निविष्ट हुए। अन्य जातियाँ भी स्वदेश के प्रत्येक भाग को अपना मान कर वहाँ जाकर बस जाती थीं। इसका इतिहास प्रसिद्ध उदाहरण लाट देश (उत्तरी गुजरात) के बुनकरों की श्रेणी का है जो अपने समस्त परिवारों के साथ मालवा के दशपुर नामक स्थान में आ बसे थे। अपने नए क्षेत्र में भी उन्होंने सुंदर रेशमी वस्त्रों से समाज में ख्याति प्राप्त की। उस पट्ट वाय श्रेणि ने अपने शिल्प से धनोपार्जन करके मंदसौर में सुंदर सूर्य का मंदिर बनवाया[6]। राजाओं के विवाह संबंध दूर-दूर प्रांत की राजकन्याओं के साथ होते थे। वर्णरत्नाकर की एक सूची में उनके नाम इस प्रकार दिए हैं:–

'तेलगिनी, मरहठिनी, गौड़िनी, कनउजिनी, नेपालिनी, मालविनी, तिरहुतिनी, जजाउतिनी (जुझौति या बुंदेलखंड), कौंचिवारिनी (दक्षिण का कांचीवरनम्) मागधिनी, कमतवारिनी (कोंतवार, चंबल पार्वती के बीच का प्रदेश, प्राचीन कुंतिराष्ट्र) मोरावरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(मरुदेश), कास्मीरिणी।

इस प्रकार दूर-दूर के प्रांतों में परस्पर विवाह संबंध की कल्पना का सुंदर चित्र कालिदास ने इंदुमती के स्वयंबर के प्रसंग में खींचा है।

'विदर्भदेश की राजकुमारी इन्दुमती से विवाह करने के लिए उत्सुक अवंति, माहिष्मति (चेदि), मथुरा, कलिंग पांड्य देशों के राजकुमार एकत्र हुए' (रघु. सर्ग 6)

विविध प्रांतों में ऐक्य भावना लाने का यह सबसे अच्छा मार्ग था। देश में फैला हुआ जन जितनी दूर तक अपने को एक समझता है वहीं तक विवाह आदिक संबंध जोड़ने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। अत्यंत प्राचीन काल में जनपदों की सीमाओं से ऊपर उठकर पारस्परिक विवाह संबंध उन्मुक्त रूप में होते थे। इन ओत-पोत तारों का एक सचित्र वर्णन महाभारत में मिलता है। एक ही पुरुवंश में राजा पुरु ने कोशल देश, प्राचिनवान ने अश्मक, सार्वभौम ने केकय, जयत्सेन ने विदर्भ, अक्रोधन ने कलिंग, देवातिथि ने विदेह, ऋच ने अंग, भरत ने काशि, भुमन्यु ने दशार्ह (काठियावाड़), हस्ति ने त्रिगर्त, अजमीढ़ ने केकय और गंधार, विदूरथ ने मगध, प्रतीप ने शिवि, धृतराष्ट्र ने गंधार, और पांडु ने मद्र और कुंतिराष्ट्र देशों की राजकुमारियों से विवाह किए, (आदि. अ. 90)

इस वर्णन का भौगोलिक क्षितिज गंधार से कलिंग और दक्षिण में अश्मक और पश्चिम में कठियावाड़ तक विस्तृत था जिसके अंतर्गत रक्त संबंधों का दृढ़ संघटन सामाजिक जीवन की एक स्वाभाविक सच्चाई थी। मातृभूमि की मौलिक एकता के ये प्राचीन सूत्र अर्वाचीन जीवन के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं। जहाँ ये निर्बल पड़े हों वहाँ उन्हें पुनः पुष्ट करना होगा।

संदर्भ

1. धुनुष्केण अनिषुणा व्रात्याः प्रसेधमाना यन्ति। (लाट्यायन श्रौत-सूत्र 8/6/7) टीका. ..व्रात्या लोकं प्रसेधमाना आसेधन्तः
   त्रासयन्तो यन्ति। और भी कात्यायन श्रौतसूत्र 21/123-148।
2. अष्टाध्यायी 5/2/21 और 5/3/113 नानाजातीया अनियत वृत्तयः। उत्सेधजीविनः संघा व्राताः।
3. श्री जी.बी. सीतापति, प्रधान संपादक तेलगु शब्दकोश।
4. देखिए सुनीतिकुमार चटर्जी, द्राविड़, लोकवार्ता दिसंबर 1944 पृ. 141-152। सुनीति बाबू का सुझाव है कि आदि द्राविड़ों का जातीय नाम संभवतः द्रमिल अथवा द्रम्मिज था। उसके बाद लीसिया के लोग इस नाम को 'तृम्मिलि' लिखते रहे। हेरोदोत इसे 'तेरमिलाइ' लिखा है। भारतवर्ष में इनका जातीय नाम संभवतः पहले द्रमिज प्रचलित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। आर्यों ने इस नाम को संस्कृत में द्रमिल द्रमिड़, अथवा द्रविड़ के रूप में वदल दिया जो बाद में पाली तथा सिंहली भाषा में 'दमिल' मिलता है। ई. सन् की प्रथम सहस्त्राब्दी के मध्यभाग में इसका रूप तमिल हो गया।

5. इलंगो अडिगल नामक चेर राजकुमार द्वारा विरचित। शिलम्बु नूपुर, उसकी कहानी के आधार पर विरचित काव्य।
6. कुमारगुप्त और बंधुवर्मा का मंदसोर शिला-लेख, 436-473 ई.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-8

भाषा और साहित्य

भाषा और साहित्य मनुष्य की उत्कृष्टतम कृतियाँ हैं। वे मानव के अंतरतम विचारों का परिचय देते हें। भेदों से ऊपर उठकर एकता की खोज में मनुष्य ने जो प्रयत्य किए और जो सफलता उसे मिली उनका सबसे स्पष्ट दर्शन साहित्य में सुरक्षित रहता है। भारतीय भाषा और साहित्य में देश की मौलिक एकता के जो दृढ़ प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनसे सदा के लिए प्रश्न विवाद के ऊपर उठ जाता है। मातृभूमि और राष्ट्रीयता के संबंध में साहित्य की साक्षी अत्यंत प्राचीन, व्यापक, पुष्कल और प्रभावशालिनी है।

भाषा के विषय में ऐतिहासिक सत्य यह है कि भाषा धर्मों से ऊपर है। एक युग विशेष की जो भाषा थी उसे समस्त धर्मावलंबियों ने अपनाया। वैदिक काल से सूत्रों के युग तक संस्कृत साहित्यिक और धार्मिक भाषा थी। उस समय जितना साहित्य बना वह सब संस्कृत में था। भगवान् बुद्ध और महावीर के समय प्राकृत भाषाओं का उदय हुआ। बौद्धों का त्रिपिटक साहित्य पालि में और जैनों का अंग साहित्य अर्धमागधी प्र कृत में बना। ई. प्रथम शताब्दी के लगभग साहित्यिक क्षेत्र में बौद्धों ने संस्कृत भाषा को पुनः अपना लिया। महाकवि अश्वघोष के समय से बौद्ध साहित्य में संस्कृत भाषा का ही एक मात्र प्रयोग देखने में आता है। पालि के पुराने त्रिपिटक साहित्य का गुप्तकाल में संस्कृत में अनुवाद किया गया। उस समय बौद्धों के जो कई संप्रदाय थे, जैसे सर्वास्तिवादी, महासंघिक, सम्मितीय उन सबों ने अपने-अपने लिए बहुत सी नई सामग्री जोड़कर त्रिपिटक साहित्य का संस्कृत में उलथा कर लिया। इस समय मध्य एशिया से लेकर दक्षिण भारत और द्वीपमय भारत तक संस्कृत राष्ट्रीय भाषा, धार्मिक भाषा, साहित्यिक भाषा और अंतर्राष्ट्रीय भाषा के पद पर आसीन हुई। संस्कृत भाष ने इस स्वर्णयुग में राष्ट्र के विचारों में अभूतपर्वू तेज, आत्मविश्वास और साहस की सृष्टि की। इसमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संदेह है कि संस्कृत भाषा के सार्वदेशिक और सक्षम माध्यम के अभाव में राष्ट्र की कभी ऐसी उन्नति हो सकती जैसी कि गुप्तयुग में हुई। महायान बौद्ध संस्कृत साहित्य में ललित गद्य के उतने ही अच्छे उदाहरण मिलते हैं। जितने कालिदास के पद्य में।

जैसा ऊपर संकेत दिया गया है संस्कृत इस युग में न केवल भारत के भीतर अंतःप्रांतीय भाषा थी, बल्कि भारत और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के माध्यम की भी वही भाषा थी। चीनी यात्रियों ने इस देश में नालंदा और अन्य विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन किया। इनमें चीनी यात्री श्युआन् च्याङ् का नाम मुख्य है। भारत से स्वदेश लौटने पर उसके और नालंदा के आचार्यों के बीच जो पत्र व्यवहार हुआ वह संस्कृत में था।[1]

जावा के बोरोबुडूर महा स्तूप में बुद्ध की जीवन कथाओं के जो कई उत्कीर्ण शिलापट्ट हैं उनका मूल आधार संस्कृत का 'ललित विस्तर' ग्रंथ था। नालंदा विश्वविद्यालय में एक ताम्र पट्ट मिला है जिससे ज्ञात होता है कि जावा सुमात्रा के शैलेंद्र सम्राट् बालपुत्र देव ने नवीं शताब्दी में यहाँ एक विहार बनवाया था और उसने चातुर्दिश आर्य भिक्षु संघ के उपभोग के लिए पाँच गाँव दान में दिए थे। अनेक विद्यार्थी विदेशों से उस विहार में आकर इस देश की भाषा और साहित्य का अध्ययन करते थे। उड़ीसा के राजा शुभकरदेव ने बौद्ध संस्कृत ग्रंथ 'गंडव्यूह' की निजी पुस्कालय की प्रति चीन के सम्राट् के पास अपने हस्ताक्षरों सहित भेजी थी। सैकड़ों भारतीय पंडितों ने चीन में जाकर संस्कृत ग्रंथों का चीनी में अनुवाद किया। कंबोज (वर्तमान कंबोडिया), जावा एवं अन्य द्वीपों में संस्कृत के शिलालेख और साहित्य भी प्राप्त हुआ है जो भाषा के क्षेत्र में संस्कृत की सर्व मान्यता सूचित करता है।

जिस समय बौद्धों ने महायान धर्म के अभ्युदय के साथ संस्कृत को अपनाया उस समय जैन अपने प्राचीन अंग साहित्य की टीकाएँ महाराष्ट्री प्राकृत में लिख रहे थे। इन टीकाओं का अतिविस्तृत साहित्य उपलब्ध हुआ है जिसकी प्रामाणिकता सर्वत्र मान्य है। लगभग गुप्तकाल में जैन विद्वानों ने भी संस्कृत में ग्रंथ रचना आरंभ की। सिद्धसेन दिवाकर प्रखर मेधावी और नए विचारों का स्वागत करने वाले विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत में बहुत-सी द्वात्रिंशकाएँ (बत्तीसियाँ) लिखीं। इस समय जैन विद्वान् संस्कृत के क्षेत्र में उतरे और एक सहस्त्र वर्षों तक प्रत्येक विषय में वे संस्कृत में ग्रंथ रचना करते रहे। जैनेंद्र और शाकटायन के व्याकरण ग्रंथ संस्कृत भाषा की शिक्षा के लिए ही हैं जिनका मुख्य आधार पाणिनि व्याकारण था। काव्य, अलंकार, कथा, आख्यायिका, गणित, वास्तुशास्त्र आदि विषयों में जैन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्वानों ने संस्कृत को बहुमूल्य देन दी है। वस्तुतः भाषा के क्षेत्र में धर्मों का भेद नहीं था।

यद्यपि कहने के लिए इस देश में अनेक भाषाएँ हैं किंतु आर्य भाषा परिवार में सब का मूल संस्कृत ही थी। संस्कृत के ब्राह्मसर से अनेक प्रांतीय और प्रादेशक भाषाओं की धाराएं निर्गत हुई हैं। भारतीय भाषाओं के इतिहास में सर्वप्रथम वैदिक साहित्य उपलब्ध होता है। वैदिक मंत्रों की भाषा तत्कालीन लोकभाषा के अत्यधिक निकट जान पड़ती है। उसकी शब्दावली, उसके भाव और काव्य के अनेक अभिप्राय एवं उपमा आदि अलंकार भारतीय साहित्य की सबसे पुरानी परम्परा तक हमें ले जाते हैं। वैदिक साहित्य का अंतर्यामी साहित्यिक सूत्र कालांतर की भाषा और साहित्य में पिरोया हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के निम्नलिखित भाव लोक मानस के अत्यंत निकट हैं।

'मैं जो हवा से भरी धोंकनी की तरह फूला-फूला फिरता हूँ, मुझ क्षमा करो हे महान् प्रभु! मुझे क्षमा करो, कृपा करो।' (2)

'हे पवित्र और शक्तिशाली प्रभु, अपनी दीनता से मैं उलटे मार्ग पर चलता रहा, मुझे क्षमा करो, कृपा करो।' (3)

'पानी के बीच में रहने पर भी यह गायक प्यासा है, हे महान् प्रभु, क्षमा करो, कृपा करो' (4)।[2]

इन मंत्रों में कही हुई भक्त की दीनता, फूली हुई धोंकनी की तरह उसका अहंकार भाव और पानी के भीतर रहते हुए अविवेक वश प्यासे रहने का अभिप्राय भारतीय साहित्य में सुपरिचित है[3]। उनकी अवच्छिन्न धारा देशव्यापी साहित्य की विशेषता है। रूप और श्री विषयक काव्य के अभिप्रायों का जन्म भी वैदिक साहित्य में मिलता है।

'जैसे युवक रूपवती युवतियों के साथ मुदित और हर्षित होता है वैसे ही सोम मीठी जलधाराओं के साथ।' (5)

'जैसे युवतियाँ कामनाओं से भरी हुई उस युवक को प्रणाम करती हैं जो उनके लिए प्रेम लाता है, ऐसे ही ये दिव्य जलधाराएँ सोम के साथ मिलती हैं[4]।'(6)

'इंद्राणी सुंदर भुजाओं वाली, सुंदर अंगुलियों वाली, सुंदर केशों वाली और पृथुजघना है' (ऋग्वेद 10/86/8)। वह कहती है 'कोई स्त्री मुझ सी सुंदर नहीं, मेरा जैसा गाढ़ आलिंगन किसी में नहीं और न मेरे समान उमंग से अपना कटिप्रदेश पति के लिए अर्पित करने वाली कोई है[5]।' स्त्री और पुरुषों के रूप वर्णन के अनेक अभिप्राय प्राचीन वैदिक साहित्य में जन्म लेकर कालांतर के काव्य साहित्य में विकसित पाए जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनेक दार्शनिक और धार्मिक विचारों की परंपरा भी वैदिक काल से विकसित होकर कालांतर के साहित्य में पाई जाती है। ऋग्वेद और अन्य वैदिक साहित्य सच्चे अर्थों में भारतीय विचारधाराओं की प्रथम धात्री हैं। सृष्ट, चैतन्य, प्रकृति, प्राणधारा, विश्वव्यापी ऋत या अखंड सत्यात्मक नियम जिन्हें कालांतर में धर्म कहा गया इत्यादि विचारों का प्रथम स्रोत वैदिक साहित्य है। वह इसलिए और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसके द्वारा हम भारत के प्रादेशिक साहित्यों में फैले हुए विचार तंतुओं की एकता को पहचान सकते हैं।

वैदिक भाषा देश की एकता का मूल बीज है। उससे समस्त भारतीय वाङ्मय विकसित और पल्लवित हुआ है। भौतिक जीवन से संबंधित अनेक शब्द वैदिक समय से लोक में चालू हैं। अथर्ववेद के कृषिसूक्त (3/17) में किसानों द्वारा हल-बैल और जुए से खेत जोत कर बीज बोने और हंसिया से पकी फसल काटने का जो वर्णन है वह लोक जीवन की सच्चाई और साहित्य की प्राचीनतम परंपरा प्रस्तुत करता है। सीर, युग, बीज, लांगल, सीता, फाल, वाह (बैल), कीनाश (किसान), वरत्रा (वरता या मोटी रस्सी), सुफलाभूमि आदि शब्द जो इस सूक्त में प्रयुक्त हुए हैं अभी तक लोक के कृषि जीवन की निधि हैं। वैदिक काल में संस्कृत भाषा जीवन के सब क्षेत्रों पर छा गई थी। वह विचार और जीवन का एक शक्तिशाली माध्यम बन चुकी थी। उसी की परंपरा में ब्राह्मण कालीन भाषा और सूत्रों की भाषा का विकास हुआ। मध्य एशिया (कंबोज) से लेकर कलिंग तक विस्तृत भाषा के स्वरूप और शब्द सामग्री के आधार पर पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी की रचना की। पाणिनि व्याकरण लगभग ढाई सहस्त्र वर्षों से देश की एकता का महान् जयस्तंभ रहा है। उसके शिखर पर प्रज्ज्वलित प्रकाश से सब को प्रेरणा और मार्ग दर्शन मिला है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक पाणिनि व्याकरण की प्रचार भूमि है। आज भी उसी के द्वारा जनता संस्कृत से अपना परिचय करती है। किसी समय गंधार से जावा सुमात्रा और श्याम तक पाणिनि व्याकरण भारतीय वाङ्मय की एकता का प्रतीक बन गया था। पाणिनि ने संस्कृत भाषा के अनेक बिखरे हुए स्रोतों को एक में मिलाकर उसे एक प्रबल महाधारा का रूप दिया, जिसने देश भर की भाषा और उपभाषाओं को अपने जल से सींचा है। भाषा का जो स्वरूप अष्टाध्यायी में स्थिर हो गया था, वह जहाँ तक संस्कृत का संबंध है अभी तक यथापूर्व है। यद्यपि उसमें अनेक नए शब्दों का जन्म हुआ, नई साहित्यिक शैलियों का भी बराबर विकास होता रहा, किन्तु व्याकरण के ठाट में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। एक प्रकार से पाणिनि द्वारा संस्कृत भाषा अमर बना दी गई। जो चाहे पाणिनि के बताए हुए सरल मार्ग से इस भाषा का अंतरंग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिचय प्राप्त कर सकता है। देश के विभिन्न मस्तिष्कों को एक दूसरे के साथ समन्वित करने का जो कार्य पाणिनि द्वारा हुआ वैसा किसी अन्य उपाय से संभव नहीं था।

इस देश के भाषा विकास में प्रत्येक नया युग अपने पूर्व की साहित्यिक और भाषा परंपराओं को अपनाकर आगे बढ़ता रहा है। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पाली, अर्धमागधी प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत और अपभ्रंश, भाषा और साहित्य के ये विविध रूप अपने देश में रहे हैं। इस सब में व्याकरण के बाहरी भेदों की अपेक्षा शब्दों और अर्थों का मौलिक साम्य बहुत अधिक है। वस्तुतः वे एक ही वंशवृक्ष की संतति हैं। अपभ्रंश काल (800 से 1100 तक) के अनंतर लोक भाषाओं का जन्म हुआ। उनमें प्रादेशिक भेद अवश्य हैं, किंतु साहित्य के अभिप्राय और संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं की पैतृक संपत्ति का उत्तराधिकार सबको एक समान प्राप्त हुआ। कश्मीरी, नेपानी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, बंगला, उड़िया, हिंदी ये आर्य परिवार की भारतीय भाषाएँ हैं। इनकी शब्दावली का अधिकांश भाग संस्कृत और प्राकृत पर आश्रित होने के कारण एक दूसरे से बहुत कुछ मिलता है। जैसा निम्नलिखित उदाहरणों से ज्ञात होता है:–

हि. कौड़ा, कौड़ी पं. कौड़, कौड़ी। ने. कौड़ि। वंकड़ि।
सि. कोड़। गु. कोडो कोडी। म. कवडी। सं. कपर्दिका।
हि. जागना। कश्मीरी जागुन् पं. जागणा। ने. जाग्नु। वं.
जागा। सि. जागणु। गु. जाग्वुं। म. जाग्णे। सं. जागर्ति, जागरण।
हि. बूढ़ां कश्मीरी बुडु। पं. बुड्ढ़ा। नेबुडो। वं. बुड़।
सि. बुडहों। गु. बूढ़। सं. वृद्ध।

इन उदाहरणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उच्चारण का भेद होते हुए भी मूल शब्द एक है जिससे प्रादेशिक भाषाओं के नाना रूप विकसित हुए है। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त लंका की सिंहली बोली का जो पाली से निकली हुई है हमारी भाषाओं से सीधा संबंध है। इन भाषाओं के साहित्यिक रूप में संस्कृत शब्द की प्रधानता होने से उनके पारस्परिक भेद नगण्य रह जाते हैं। उत्तर भारत के एक प्रांत में दूसरे किसी प्रांत की बोली 70 प्रतिशत तक समझी जा सकती हैं। दक्षिण की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं के साहित्य और शब्दावली की परंपरा पर्याप्त मात्रा में संस्कृत के साथ संबंधित है। आज भारतवर्ष में राष्ट्रीय एकता के संपादन के लिए जिस समान भाषा की आवश्यकता है उसकी सामग्री पहले से ही विद्यमान है। प्रादेशिक भाषाओं में जो संस्कृत का अंश है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके द्वारा एकता की यह नींव हमें प्राप्त होती है। देश में जो भाषाओं के अनेक भेद हैं उन्हें हमारे पूर्वज भी अच्छी तरह पहचानते थे। वर्णरत्नाकर में आदर्श चारण का परिचय देते हुए लिखा है कि उसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, शौरसेनी और मागधी इन छः भाषाओं का तत्वज्ञ होना चाहिए और साथ ही उसे शकारी, आभीरी, चांडाली, शाबरी, द्राविडी, औत्कली एवं विजातीय इन सात उपभाषाओं का जानकार भी होना चाहिए (पृ. 44)। किंतु भाषा उपभाषाओं के ये अनेक भेद जीवन के बहुत ही थोड़े अंश को छू पाते थे। भाषाओं के कारण विचार जगत् के टुकड़े नहीं हुए। भाषाएं भिन्न थीं किन्तु उनके द्वारा प्रतिपादित विचार तत्व सर्वत्र एक थे। मानसलोक में जिस अध्यात्म तत्व की साधना साहित्य को इष्ट होती है वह देश में सर्वव्यापक और अखंड था। उससे निकले हुए साहित्यिक स्रोत भिन्न-भिन्न प्रांतों में बहने लगे, किंतु उन्हें पोषित करने वाले विचारों के मेघ जल आपस में मिले हुए थे।

भारत की मौलिक एकता का एक सुंदर दृष्टांत उसकी लिपियाँ हैं। न केवल उत्तरी भारत के समस्त आर्य परिवार की भाषाओं का, किंतु दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ी, मलयाली और ग्रंथ संज्ञक लिपियों का उद्‌गम और विकास भी एक मूल ब्राह्मीलिपि से हुआ है। सिंहल, वर्मा, और स्याम देश की लिपियाँ भी मूल ब्राह्मीलिपि के ही विकसित रूप हैं। यह ब्राह्मीलिपि अशोक के समय में (272 से 232 ई. पूर्व तक) प्रायः समस्त देश में एक समान प्रचलित थी। अशोक ने अपने इन लेखों से मानो देश के चारों ओर ब्राह्मीलिपि का एक घेरा सा डाल दिया। उत्तर में देहरादून के कालसी नामक स्थान में यमुना के तट पर सिर उठाए हुए एक बड़े पत्थर के ढोके पर ब्राह्मीलिपि के स्पष्ट अक्षरों में उसके 14 धर्मलेख या धर्मलिपियाँ खुदी हुई हैं। पश्चिमी समुद्र तट पर शूर्पारक (आधुनिक सुपारा) नामक स्थान में भी उसके धर्मलेखों का एक केंद्र था। दक्षिण में मैसूर के ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर, आदि के निकट उसके ब्राह्मी लेखों का एक गुच्छा पाया गया है। पूरब में कलिंग के धौली और जौगढ़ नामक स्थानों में अशोक के महत्त्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो उसके जीवन के क्रांतिकारी परिवर्तन पर प्रकाश डालते हैं। ये लेख सारे संसार के इतिहास में महत्त्वपूर्ण हैं। इस लेखों ने अशोक को भारतीय सम्राट् के पद से ऊँचा उठा कर विश्व मानवों के हृदय-आसन पर बिठा दिया है। इन लेखों की वाणी नवीनतम मानव की अभिलाषाओं के निकट है। यह शांति और प्रेम की वाणी है जो अनंत करुणा से सनी है। इनकी मूल लिपि ब्राह्मी थी जो इस प्रकार के विश्वोपयोगी लेखों के कारण गौरवान्वित हुई। ब्राह्मीलिपि अत्यंत सरल स्पष्ट निश्चित और वैज्ञानिक थी। उसमें एक ध्वनि के लिए एक संकेत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। उसमें स्वर व्यंजनों का पार्थक्य, ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का भेद, स्वरों की मात्राएँ, मिलाकर उच्चारित होने व्यंजनों को संयुक्त लिखने की व्यवस्था आदि अनेक गुण थे जो संसार की किसी भी पुरानी लिपि में नहीं पाए जाते। ब्राह्मी से ही इस देश में विविध लिपियों का विकास हुआ जिनमें देवनागरी लिपि मुख्य है। इसमें भी ब्राह्मी के सब गुण विद्यमान हैं। प्राचीन संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों में देवनागरी का प्रयोग प्रायः सर्वत्र होता था। संस्कृत के छपे ग्रंथों की लिपि होने के कारण देवनागरी का प्रचार विद्वानों में न केवल इस देश में बल्कि बाहर भी है। इस समय सर्वसम्मति से देवनागरी राष्ट्रलिपि के रूप में स्थिर हुई है। यह निश्चय देश की प्राचीन परंपराओं के अनूकूल है और उसे एकता के सूत्र में बाँधने में सहायक होगा। ज्ञान साधन का एक मुख्य माध्यम लिपि है। प्रत्येक प्रांत का साहित्य भी जिस मात्रा में भविष्य में देवनागरी लिपि द्वारा प्रस्तुत किया जा सकेगा उतना ही वह देश की अधिकाधिक जनता के लिए सुलभ होगा। लिपि की एकता भारतीय भाषाओं को एक दूसरे के और भी निकट खींच सकेगी।

भाषा और लिपि के क्षेत्र में जैसी देशव्यापी मौलिक एकता रही है वैसी ही साहित्य के प्रत्येक विभाग में मिलती है। वैदिक साहित्य इस देश का सर्व प्राचीन और सर्वोपरि साहित्य है, उसके पठन-पाठन की परंपरा सर्वत्र एक-सी थी। वैदिक मंत्रों के सस्वर पाठ की विधि कश्मीर, मद्रास, महाराष्ट्र और बंगाल में एक जैसी है। मंत्रों को कंठस्थ रखनेवाले श्रोत्रिय विद्वान सहस्त्रों वर्षों से प्रयत्नपूर्वक सस्वर पाठ की रक्षा करते आए हैं जिसमें अभी तक एक मात्रा का भी अंतर नहीं पड़ने दिया गया। धार्मिक ग्रंथों की इतनी पाठ शुद्धि का आधार विद्वानों का देशव्यापी संगठन और सर्वमान्य नियम थे। प्राचीन प्रातिशाख्य ग्रंथों में शब्दों के स्वरों के उच्चारण के जो नियम स्थिर हो गए थे उन्हें देशव्यापी मान्यता प्राप्त थी। श्रौतसूत्रों में प्रतिपादित यज्ञ यागादिक कर्मकांड, अनुष्ठान, एवं गृहस्थों में होने वाले षोडश संस्कार जिस प्रकार सब स्थानों में मान्य रहे हैं उससे भी देश की सांस्कृतिक एकता का दृढ़ प्रमाण मिलता है। विभिन्न संस्कार पद्धतियाँ गृह्यसूत्रों के आधार पर रची गईं और उनमें परस्पर अत्यधिक साम्य है। जन्म से मृत्यु पर्यंत समय-समय पर ये संस्कार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में होते रहते हैं। उनके द्वारा समस्त लोक एक जैसी रहन-सहन और सामाजिक पद्धति के अनुकूल बनता है। ऐक्यभाव के प्रतिपादन में संस्कारों का अत्यधिक महत्त्व है। जातकर्म, नामकरण, शिक्षा, विवाह और मृतक संस्कार प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। उनका क्षेत्र समस्त लोक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत जैसे महान् देश में विचारों की एकता और अनेकता का जैसा अच्छा उदाहरण दार्शनिक साहित्य में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। यहाँ विचारों की पूरी स्वतंत्रता थी। ईश्वर, लोक, परलोक, आत्मा, जीवन, संसार, कर्म, पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, प्रवृत्ति, निवृत्ति, भाग्य, पुरुषार्थ, ज्ञान, भक्ति, मुक्ति, पुनर्जन्म, अद्वैत और द्वैत आदि के विषय में विचार करने और अपना मत प्रकट करने की पूरी छूट प्रत्येक व्यक्ति को मिली हुई थी। जिस प्रकार सूर्य की किरणों के ताप से जल के प्रत्येक संचय स्थान से भाप आकाश में उठकर मेघरूप में संचित होती है और पुनः लोक में उसकी वृष्टि होती है, इसी प्रकार अनेक चिंतनशील मस्तिष्क से विचारों के मेघ उठे और लोक में निर्बाध बरसते रहे। उपनिषद्, वेदांत, सांख्य, योग, वैशैषिक न्याय, मीमांसा, बौद्ध और जैन दर्शनों का पठन-पाठन और प्रभाव सारे देश में रहा है। वे एक स्थान या प्रांत तक सीमित नहीं रहे। वादरायण व्यास द्वारा रचे हुए वेदांत सूत्रों पर शंकर, रामानुज आदि सुदूर दक्षिण के आचार्यों ने भाष्यों की रचना की। वस्तुतः ब्रह्मसूत्र और उनके भाष्य एक ही देशव्यापी अखंड ज्ञान साधना के अंग हैं, वे एक ही ज्ञानाधिदेवता के चरणों में समर्पित पुष्प हैं। जिनका सौरभ देश और काल से ऊपर उठकर सर्वत्र व्याप्त हो गया। भारत का दार्शनिक ज्ञान कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैली हुई भारतीय प्रजाओं में आतप्रोत समझना चाहिए। विभिन्न दर्शनों के महनीय ग्रंथ देश की मौलिक एकता के उज्ज्वल जयस्तंभ हैं। काश्मीर, बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, केरल सब जगह के आचार्य और विद्वान् अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार मूल ग्रंथों पर भाष्य और टीकाएँ रचने के लिए उत्सुक रहते थे। मीमांसा दर्शन पर शवर स्वामिन्, न्याय पर वात्स्यायन, वैशेषिक दर्शन पर प्रशस्तपाद, योग पर व्यास, सांख्य पर ईश्वर कृष्ण के भाष्य और कारिकाएँ सारे देश में प्रामाणिक समझी जाती हैं और पठन-पाठन में प्रचलित हैं। प्रायः प्रत्येक दर्शन की परंपरा उस उत्तरोत्तर बढ़ती हुई नदीधारा की तरह प्रवृत्त होती है जो अपने स्रोत से चल कर अनेक शाखा और सहायक नदियों का जल ग्रहण करती हुई लोक कल्याण के लिए प्रवृत्त होती है। दर्शन की चिंतन धाराओं के तटों पर भिन्न-भिन्न देशकालों के अनेक विद्वान योग्य तीर्थों का निर्माण करते रहे जहाँ उन विचारों का अवगाहन जनता के लिए सुलभ था। उदारहण के लिए, ब्रह्मवाद के प्रतिपादक उपनिषद् सर्वमान्य हुए। इनका मथा हुआ सार वेदांत सूत्रों में निबद्ध हुआ जिन्हें ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। वादरायण व्यास के रचे हुए ये सूत्र ज्ञान के आकाश में इस प्रकार ऊँचे उठे जैसे पर्वतों में हिमालय। इन पर शंकरचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्वार्काचार्य और वल्लभाचार्य जैसे सूक्ष्मदर्शी विद्वानों ने देश के विभिन्न भागों से उठकर अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाष्य रचे और पुनः प्रत्येक के विचारों की शाखा प्रशाखाएँ प्रचलित हुईं। शंकर के शारीरक भाष्य पर आनंदगिरि (825 ई.) ने न्याय और वाचस्पति मिश्र (850 ई.) ने भामती नामक टीकाएँ लिखीं। भामती पर अमलानंद (1250) ने कल्पतरु और उस पर अप्पयदीक्षित (1550 ई.) ने परिमल टीका का निर्माण किया। भाष्य, टीका, प्रटीका, टिप्पणी, दीपिका, अर्थप्रकाशिका और वृत्तियों का यह जाल कालक्रम से बढ़ता जाता था और इनका ताना-बाना राष्ट्र के ऊँचे ज्ञानस्तूप को श्रद्धा से अर्पित देव-दूष्य[6] की तरह चारों ओर से ढक लेता था।

चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, रामानुज दर्शन, पूर्णप्रज्ञ दर्शन (आनंदतीर्थकृत, 1170 ई.) लकुलीश पाशुपत दर्शन, शैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, रसेश्वर दर्शन, वैशेषिक दर्शन, नैयायिक दर्शन, जैमिनि दर्शन, पाणिनि दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन और शांकर दर्शन इस प्रकार भारतीय दर्शन की प्रमुख धाराएँ मध्यकाल में देश के एक कोने से दूसरे कोने तक विद्वानों के विचार क्षेत्र का विषय बनी हुई थीं। भारतवर्ष की पद्धति के अनुसार दर्शन केवल कूतूहल के लिए नहीं था, किंतु उससे जीवन का मार्ग निर्धारित होता था। राजाओं के सिंहासन और दंडबल से कहीं अधिक दार्शनिक आचार्य जनता के जीवन पर प्रभाव डालते थे और लोगों में आत्मोन्नति की प्रेरणा भरते थे। उनके देशव्यापी संगठन राज्यों की सीमाओं से ऊपर रहते हुए भिन्न प्रांतवासी लोगों को एक दूसरे से मिलाते थे। समय-समय पर तेजस्वी आचार्य अपने विचारों की विद्युत् देश भर में फैलाते रहे। उसके प्रवाह की ऊर्मियाँ लोक जीवन में नया सत्य बन कर प्रविष्ट होतीं और देश एवं काल में अपना अमिट प्रभाव डालती रहती थीं। भारतीय धार्मिक और दार्शनिक जगत् में विचारों की सहिष्णुता, सहज प्रचार और पारस्परिक आदान-प्रदान का जो विलक्षण प्रयोग हुआ वह इस देश के इतिहास का महत्त्वपूर्ण अंग है। विचारों की इस अग्नि ने जिसे अनेक तपःशील आचार्यों और विद्वानों ने समय-समय पर प्रज्वलित किया स्थूल भेदभावों को मिटाने में जो कार्य किया वह दूसरी तरह संभव न था। इन प्रयत्नों द्वारा जनता में स्थूल विविधताओं से ऊपर मौलिक एकता का सतत प्रचार होता रहा।

इस देश में न केवल धार्मिक साहित्य ही उसकी एकता का बड़ा कारण है, किंतु लौकिक साहित्य की भी देशव्यापी एक अंखड सत्ता रही है। वेद, उपनिषद् दर्शन और पुराणों की भाँति देश का काव्य साहित्य, अलंकार, कथा, आख्यायिकाएँ, छंद, कोश, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, वास्तुशास्त्र, संगीतशास्त्र, आयुर्वेद, व्याकरण, ज्योतिष, आदि साहित्य भी उतना ही व्यापक रहा है जितनी की भारतवर्ष की चतुरंत सीमाएँ। कालिदास के काव्य समस्त देश का गौरव बढ़ानेवाले हैं और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डेढ़ सहस्त्र वर्षों से सब भागों के विद्वान् उन्हें अपने रसानुभवी मन की निकटतम वस्तु मानते रहे हैं। रघुवंश के चौथे सर्ग में वंक्षु नदी से ताम्रपर्णी नदी तक एवं अपरांत (कोंकण) से श्रमरूप तक के जिस भू-प्रदेश की एकता का चित्र महाकवि ने प्रस्तुत किया था उसके अमिट अंक भारतीय महाप्रजाओं के मन में सदा के लिए बस गए। जहाँ रघुवंश का अध्ययन होता है वहीं कवि के उन शब्दों की व्यंजना मूर्त हो उठती है। कालिदास के मन में भारतीय भूगोल की यह इकाई इतनी उभरी हुई है थी कि वे उसकी ओर बार-बार ध्यान खींचते हुए नहीं अघाते। रघु की दिग्विजय के वर्णन में (रघुवंश, सर्ग 4) पूर्वसागर की ओर बहती हुई गंगा, बंग, गंगा के समुद्र में मिलने वाले स्रोत, तालवृक्षों से भरा हुआ महोदधि का किनारा, उत्कल, कलिंग, मलय, दर्दर पर्वत (वर्तमान दोद्दाबेत्ता चोटी), सहूयाद्रि, अपरांत, पश्चिमी समुद्र, त्रिकुट पर्वत, पारसीक देश के साथ टकराते हुए भारतीय भाग, सिंधु, कंबोज, हिमालय, लोहित्य और कामरूप, इस प्रकार स्थान नामों का उल्लेख करके कवि ने देश की बाहरी सीमाओं की परिक्रमा की है। पश्चिम में वंक्षु और कंबोज से लेकर पूर्व में लोहित्य नद और प्राग्ज्योतिष तक का भारतवर्ष कालिदास को इष्ट और प्रिय है। इंदुमती के स्वयंवर में एकत्र राजाओं के रूप में कवि ने देश के मध्य मंडलवर्ती भाग की सुदृढ़ एकता की कल्पना की है। यह ऐक्य भाव रक्त संबंध के द्वारा प्रस्तुत किया गया है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रदेशों के राजाओं और राजकुमार अपने आप को विदर्भ देश की राजकुमारी के साथ विवाह संबंध में बाँधने की इच्छा से उपस्थित हुए थे। मगध, अंग (भागलपुर चंपा), अवंती, अनूपदेश (नर्मदा के किनारे का प्रदेश जिसकी राजधानी माहिष्मती थी), शुरसेन (मथुरा), कलिंग, दक्षिण के पांड्य और उत्तर कोसल (अयोध्या) जनपदों के अत्यंत ज्वलंत वर्णन द्वारा महाकवि ने अपने हृदय के उदार और प्रफुल्लित भाव मातृभूमि के चरणों में अर्पित किए हैं। भूमि की समग्रता की अमिट छाप इस वर्णन में उभरी हुई दिखाई पड़ती है।

देश की एकता के विषय में कालिदास की तीसरी कल्पना राम की पुष्पक यात्रा है। सेतुबंध से अयोध्या तक निरीक्षण करती हुई उनकी वेगवती दृष्टि वाण की तरह दक्षिण और उत्तर दोनों का भूमापन कर लेती है। यह कल्पना आज की सी जान पड़ती है। ऊँचे शिखर, घने वन खंड, फैली हुई नदियों का जाल, बसे हुए जनपद, झरनों से भरे जाते हुए सरोवर, नदियों के संगम एवं इस अंतराल में भरे हुए वृक्षलता एवं पशु-पक्षियों का परिचय देते हुए कवि ने भारतभूमि का अत्यंत तेजस्वी दर्शन प्रस्तुत किया है जो आकाश यात्रा में आज भी सत्य है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेघदूत में रामगिरि से कैलास तक की मेघ यात्रा उस अखंड वृष्टि संस्थान का साहित्यिक वर्णन है जिसका प्रकृति ने इस देश में सदा के लिए विधान किया है। गुप्तकाल में देश के विभिन्न भू-भाग एक दूसरे के प्रति नई उमंग से आकृष्ट हुए, उनका पारस्परिक परिचय गाढ़ा हुआ, साहित्य और संस्कृति के नए स्रोत चारों ओर से उमड़ कर आपस में मिलने लगे, एवं भाषा, साहित्य और कला की देशव्यापी एकता इस युग में जीवन का प्रबल सत्य बन गई। कालिदास के साहित्य में इस वर्णन की जो चोखी झाँकी मिलती है वह अन्य कवियों के लिए भी आदर्श बन गई। समग्र देश की भौगोलिक पृष्ठभूमि पर बने हुए चित्र बाद के काव्यों में बढ़ने लगे। मेघदूत की शैली पर और बहुत से दूत काव्यों की रचना हुई जिनमें दूरस्थित प्रांतों के घनिष्ठ संबंधों के चित्र खींचे गए हैं।

काव्य के लक्षण, अलंकार, वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली आदि भाषा की शैलियाँ इनकी मान्यता किसी एक स्थान में सीमित न होकर देशव्यापी साहित्य के लिए थी। दंडी ने कहा है कि महाकाव्य में नगर, समुद्र, पर्वत, चंद्रोदय, सूर्योदय, षड्ऋतु, उद्यान क्रीड़ा, जलक्रीड़ा, मधु पान, पुत्रजन्म, विवाह, नायक,-नायिका का संयोग-वियोग, युद्ध आदि का वर्णन होना चाहिए। काव्य के ये लक्षण सर्वत्र मान्य ठहराए गए और अनेक भारतीय काव्यों का स्वरूप इसी ठाट पर खड़ा किया गया। अश्वघोष ने बुद्ध चरित काव्य लिख कर चरित काव्यों की प्रथा डाली। रविषेण का पउमचर्य (पद्मचरित्र), उत्तर रामचरित, महावीर चरित, हरिचरित, नैषध चरित, जसोहर चरित, (अपभ्रंश यशोधर चरित), करकंड चरित, णायकुमार चरित (नागकुमार चरित), पार्श्वनाथ चरित आदि सैकड़ों चरित काव्यों की परंपरा गोस्वामी जी के रामचरित मानस तक चली आती है। जैन साहित्य में तो प्राकृत और अपभ्रंश में सैकड़ों ही चरित काव्य लिखे गए। काव्य रचना की शैलियाँ और काव्य के बाह्य रूप प्रांत विशेष तक सीमित न रह कर देश भर में व्याप्त हो जाते थे। उदाहरण के लिए उत्तरभारत में सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों और तुलसीदास जी ने विशिष्ट पद साहित्य की रचना की। कन्नड़ साहित्य में भी वैष्णव भक्तों के रचे हुए अनेक पद हैं। उत्तरी भारत की तरह इन भक्तों के नाम भी दासांत थे जैसे पुरंदर दास और कनकदास; अतएव इनका साहित्य 'दासर पदगल' (दासों की पदावली) इस नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण भारत में भी वैष्णव और शिवभक्तों ने पद साहित्य की रचना की थी।

भारतवर्ष का कहानी साहित्य भी देश की एकता का दीर्घकालीन प्रमाण प्रस्तुत करता है। जातक संग्रह की लगभग साढ़े पाँच सौ कथाएँ किसी समय लोक-कहानियों के रूप में प्रचलित थीं। उनमें से अनेक कहानियाँ आज भी जनपदों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की बोलियों में सुरक्षित हैं। उदाहरण के लिए पाली की नामसिद्धि जातक (संख्या 97) की कहानी बुंदेलखंडी भाषा में इस प्रकार मिलती है।

एक जनी के घरवारे को नाव हतो ठनठन राय। बाकों जौ नाव बुरौ लगत तौ। नाव बदलवे के लाने बाने कौनउ अच्छौ नाव ढूंढ़ै चाओ। तब वा ढूंढ़न कौ निकरी।

एक जनो लकरियन को बोझ लए जा रऔ तौ। बाको नाव हतो घनघनराय। एक जनो मर गऔ तौ और बाकी अरथी जा रई ती, वाको नाव हतो अमर। लुगाई ने जौ सब देश सुनकै मन में सोची कै नाव सौ कऊँ आवत जात नई आ और जा कई।

लकरी बेचत लाखन देखे,
घास खोदतन धन धनराय।
अमर हते ते मरतन देखे
तुमई भले मेरे ठन ठन राय।

पाली में यह गाथा इस प्रकार है—

जीवकंच मतं दिस्वा
धन पालिंच दुग्गतं।
पंथकं च बने मूढं,
पापको पुनरागतो॥

अर्थात् पापक नाम का एक व्यक्ति अच्छे नाम की खोज में घर से निकला। पर मार्ग में जीवक नामधारी व्यक्ति को उसने मरा हुआ देखा। धनपाली नाम की दरिद्र दासी को कमा कर न लाने के कारण पिटते देखा। पंथक नाम के व्यक्ति को वन में रास्ता भूलकर भटकते देखा। यह देखकर पापक फिर घर लौट आया[7]।

इसी प्रकार रोहिणीजातक (संख्या 45) का यह बुंदेलखंडी रूप मिलता है:

एक लुहार हतो। बाने एक मजूर घन घालबे को राखौ और बाने दासैं कई कै जितै हम हाथ से बताउत जाएँ उतइ घन घालत जाए। बाने ऐसो ई करौ। एक बेर लुहार के मुंड में कुकौरू लगी। कुकावे को जैसइ बाने मूड़ी पै हाथ धरो तेसई बाने उतई धमाक से धन दै मारौ। लुहार बेचारी होई को होई ढेर होगी।

देश के अनेक जनपदों में इन कहानियों का जाल पुरा हुआ मिलेगा जो लोक-साहित्य की खोज का विषय है। इस देश में कहानियों के तीन बड़े स्रोत थे वृहत्कथा, रामायण और महाभारत। मूल वृहत्कथा पैशाची भाषा में थी उसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहानियाँ संस्कृत भाषा और प्रांतीय भाषाओं के माध्यम से देश में फैल गईं। बुद्ध स्वामिन् का वृहत्कथा श्लोक संग्रह, क्षेमेंद्र की बृहत्कथा मंजरी उसी के रूप हैं। जैन साहित्य का वसुदेवहिंडी ग्रंथ जिसमें वसुदेव के देश देश में हिंडन या घूमने और वहाँ राजकन्याओं से विवाह करने की कहानियाँ हैं मूल वृहत्कथा पर ही आश्रित थी। और भी कथासरित्सागर, वेतालपंच विंशतिका आदि के द्वारा वे प्राचीन कथाएँ नए नए रूपों में देश में सर्वत्र फैल गईं। आज लोक साहित्य की छानबीन करने से वे पहचानी जा सकेंगी। उदाहरण के लिए जैन कवि धनपाल (दसवीं शती) द्वारा अपभ्रंश भाषा में लिखी हुई 'भविसयत कहा' (भविष्यदत्त कथा) नामक कहानी की वस्तु कथा 'ब्रज की जैसी करनी वैसी भरनी' नामक ग्रामीण कहानी में ज्यों की त्यों मिलती है। कहानी का मूल ठाट इस प्रकार हैः

एक सेठ की दो स्त्रियों से बड़ा पुत्र साधु और छोटा दुष्ट स्वभाव का हुआ। वे दोनों व्यापार के लिए किसी द्वीप में गए। छोटा भाई बड़े को वहीं छोड़कर जहाज पर सामान लाद कर चल दिया। बड़े के साथ वहाँ की राजकुमारी ने विवाह कर लिया। साधन संपन्न होकर वे दोनों किनारे पर आए और जहाज की बाट देखने लगे। संयोग से छोटा भाई अपना मालमता खोलकर फिर वहाँ आ निकला और उसने उन्हें जहाज पर आने का निमंत्रण दिया। राजकुमारी जहाज पर चली गई पर उसके पति के आने से पूर्व ही छोटे भाई ने जहाज खुलवा दिया और देश लौटकर राजकुमारी से प्रेम और विवाह का प्रस्ताव किया। कुछ दिन पीछे बड़ा भाई भी वापस आया और उसने राजा से सब हाल कहा। राजा ने दुष्ट को उसके किए का दंड दिया और साधु भाई को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

नेक और बद की यह कहानी जिसे धनपाल ने साहित्यिक चोला पहनाया ब्रज की तरह और भी जनपदों में फैली हुई मिलेगी। इसी प्रकार 'सदयवच्छ सावलिंगा' की कहानी पंजाब से लेकर राजस्थान, बुंदेलखंड तक गाँव-गाँव में कही-सुनी जाती है। अपभ्रंश कवि अब्दुल रहमान ने अपने 'संदेश रासक' (चौदहवीं सदी) में और जायसी ने पद्मावत में इस कहानी का उल्लेख किया है जो किसी समय अत्यंत लोकप्रिय रही होगी। चंदराजा की कहानी ब्रजमंडल से लेकर मारवाड़ गुजरात कच्छ काठियावाड़ तक प्रसिद्ध है[6]। वस्तुतः भारतीय कहानी साहित्य एक है। धार्मिक रूपांतरों के होते हुए भी कहानियों की शैली और उनके अभिप्राय समस्त देश में एक जैसे हैं। पंचतंत्र भारतीय कथा साहित्य का सिरमौर ग्रंथ है। उसकी कहानियाँ पहलवी, अरबी, लैटिन आदि भाषाओं में अनूदित होकर सारे यूरोप और एशिया में छा गईं। भारतीय कहानियों के कुछ अभिप्राय मध्यकालीन नाविकों के द्वारा जो अपने जहाजों पर तारों भरी रातों में कहानियाँ कहते और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुनते चलते थे विदेशों में पहुँच गए। दक्षिण भारत से चलकर अरब पहुँची हुई किसी वीणा की आत्मकथा अलिफ लैला की कहानियों मे पाई जाती है और वही कश्मीरी भाषा के 'नए हँज कथ' लोक-गीत में आज तक सुरक्षित है"। लोक कहानियों के इस विस्तार और प्रसार में देश के सभी भागों ने हिस्सों बटाया। बौद्धों के अवदान संग्रह और जैनों के कथाकोश भारतीय कहानी साहित्य के अकूत भंडार हैं जिन्होंने लोक मानस को तृप्त किया।

नीतिग्रंथ और सुभाषित साहित्य ने भी हमारी भाषाओं को एकता के सूत्र में पिरोया है। महाभारत की विदुर नीति इस देश के बुद्धि पूर्वक व्यहारोपयोगी ज्ञान का मथा हुआ मक्खन है। उद्योगपर्व के एक कोने में लगभग 550 श्लोकों का यह विलक्षण नीति संग्रह भारतीय साहित्य का जगमतागा हुआ हीरा है जिसके अनेक घाट और पहल व्यावहारिक बुद्धि या प्रज्ञा की किरणों के स्रोत हैं। उसी परंपरा को आगे बढ़ाने वाले चाणक्य नीति श्लोक, भर्तृहरि के तीन शतक, एवं हजारों सुभाषित वाक्य हैं। दक्षिण भारत का मान्य ग्रंथ 'तिरुक्कुरल' भी उसी शैली पर है। लोक भाषाओं ने भी इस शैली को आगे बढ़ाया। तुलसी, कबीर, रहीम और वृंद के दोहे और गिरधर की कुंडलियाँ व्यावहारिक बुद्धि की व्याख्या नए-नए ढंग से प्रस्तुत करती हुई प्राचीन सम्मत नीति साहित्य की परंपरा को ही हमारे समीप तक पहुँचाती हैं।

इस देश का आयुर्वेद शास्त्र चिकित्सा विद्या का राष्ट्रीय शास्त्र है। उसकी प्रामाणिकता, प्रयोग और प्रचार देश भर में था। आयुष्य और प्राण के संवर्धन और स्वास्थ्य-संपादन की कितनी ही विधियों का आविष्कार इस देश में हुआ। अश्विनी कुमारों को देवताओं का वैद्य कहा गया है। वैदिक परिभाषा के अनुसार प्राण और अपान की संज्ञा अश्विनीकुमार है। प्राणायाम और योग के द्वारा स्वास्थ्य की प्राप्ति एवं क्षीण हुए प्राण का पुनः संपादन दैवी चिकित्सा है। अष्टांग योग की विधि देश और काल की सीमाओं से ऊपर समस्त देश में फैली हुई थी। भारतीय अध्यात्म क्षेत्र की ऊँची विभूति योग विद्या है इसके द्वारा प्राण को तपा कर पवित्र करने, मन को शांत और संयत बनाने, बुद्धि को निर्मल सूक्ष्म करने एवं आत्मा के साक्षात्कार करने की युक्ति का पूरा ज्ञान प्रतिपादित किया जाता था। योग विद्या भारतीय जीवन विधि की ऐसी विशेषता है जिसके द्वारा संसार की अन्य संस्कृतियों से वह अलग पहचानी जाती है। योग के अतिरिक्त भौतिक शरीर के स्वाध्य संपादन के लिए जिस आयुर्वेद शास्त्र का यहाँ विकास हुआ उसमें चरक और सुश्रुत का स्थान सर्वोपरि है। ये दो ग्रंथ भारतीय आयुर्वेद के जयस्तंभ हैं, इन्हीं का आश्रय लेकर अन्य आयुर्वेदिक ग्रंथों का निर्माण होता रहा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संदर्भ

1. उनका चीनी अनुवाद चीनी त्रिपिटक में सुरक्षित बच गया है। इन पत्रों की न केवल भाषा अपितु भाव भी नितांत भारतीय थे जिसका आभास निम्नलिखित सारांश से ज्ञात होता है।

पत्र

'भगवान् बुद्ध के वज्रासन के समीप (बोधगया में) निर्मित महाबोधि मंदिर के स्थविर प्रज्ञादेव अपनी विद्वन्मंडली के साथ महाचीन देश के मोक्षाचार्य (श्युआन् च्याङ् का भारतीय नाम) की सेवा में जिन्होंने सूत्र, विनय और अनेक शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया है, यह पत्र भेजते हैं और सादर प्रार्थना करते हैं कि वे रोग और कषायों से सदा कुक्त हों। आचार्य (श्युआन् च्याङ्) के अनेक मित्र यहाँ हैं, उनमें भदंत ज्ञानप्रभ विशेषरूप से आपकी कुशल-क्षेम पूछने में मेरे साथ हैं। उपासक लोग सदा आपको नमस्कार भेजते हैं। आपकी सेवा में एक पीत वस्त्र युगल भी भेज रहे हैं। अपने स्नेह की साक्षी के लिए कि हम आपको भूले नहीं हैं। उपहार के अल्पीयस भाव पर ध्यान न देकर कृपया उसे स्वीकार करें। जिन सूत्रों और शास्त्रग्रंथों की आपको आवश्यकता हो उनकी सूची भेजने की कृपा करें। हम उनकी प्रतिलिपि करके सेवा में भेज देंगें।

उत्तर

'महान् थाङ् वंशी राजाओं के देश का निवासी भिक्षु श्युआन् च्याङ् मध्यदेश में मगध के धर्माचार्य त्रिपिटकाचार्य भदंत ज्ञानप्रभ की सेवा में नम्रतापूर्वक लिखता है। मुझे लौटे हुए दस वर्ष से अधिक हो चुके। हमारे उभय देशों की सीमाएँ एक दूसरे से वहुत दूर हैं। मुझे आपका कुछ समाचार नहीं मिला, इसलिए मेरी चिंता बढ़ रही थी। अब आप सब कुशल से हैं इस समाचार से मुझे जितना हर्ष हुआ लेखनी उसका वर्णन नहीं कर सकती। संदेशहर से मुझे पता चला है कि पूज्य आचार्य भद्रशील अब इसे लोक में नहीं रहे। शोक है इस दुःखमय भव सागर की वह नौका डूब गई, मनुष्यों और देवताओं का नेत्र मुंद गया।... मेरी यह अभिलाषा है कि धर्म के पवित्र उपदेशों और सूक्ष्म विचारों की महोर्मियाँ चार समुद्रों की लहरों की तरह फैलती रहें और पवित्र ज्ञान पाँच पर्वतों के समान सदा स्थिर रहे। धर्म का फैला हुआ प्रकाश अभी तक बड़ा मधुर और पूर्ण है। श्रावस्ती के जेतवन में जो धर्म का आविर्भाव हुआ था उससे यह प्रकाश बिल्कुल भिन्न नहीं है। भिक्षु श्युआन् च्याङ् का प्रणाम।'

2. यदेमि प्रस्फुरन्नि व दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः।
मृडा सुक्षत्र मृडय॥2॥
ऋत्व समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे।
मृडा सुक्षत्र मृडय॥3॥
अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्।
मृडा सुक्षत्र मृडय॥4॥ (ऋग्वेद 7/89॥2-4)
3. पानी में मीन पियासी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोहि देखत आवे हाँसी (कबीर)।

4. याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्नमयः।
(ऋक् 10/30/5)
5. नमत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुयत्।
न मत्प्रतिच्य वीयसी न सषथ्युद्यमीयसी
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः। (ऋक 10/86/6)
6. वह वस्त्र जो प्राचीनकाल में महाप्रमाण देवमूर्तियों या स्तूपों को आच्छादित करने के लिए बढ़ाया जाता था।
7. बंबई संग्रहालय के अध्यक्ष श्री रणछोड़लाल ज्ञानी से लोक में प्रचलित गाथा का यह रूप मुझे सुनने को मिलाः
लक्ष्मी तो कंडे चुने, भीख मंगे धनपाल।
अमरसिंह तो मर गए, भले विचारे ठनठनपाल॥
8. बज्र भारती... वर्ष 4 सं. 4, 5, 6। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 52 पृ. 11 अगरचंद नाहटा का 'लोक कथा संबंधी जैन साहित्य' शीर्षक लेख।
9. स्टाइन और ग्रियर्सन कृत काश्मीरी कहानियों का 'हातिम्स टेल्स' नामक संग्रह।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-9

राजनीति के क्षेत्र में देश की एकता

भौगोलिक एकता राष्ट्रीय एकता का मूल आधार है और राष्ट्रीय एकता उसका आवश्यक फल है। पुराणों के 'भुवनकोश' नामक अध्यायों में सप्त द्वीपों भूगोल का वर्णन मिलता है। मेरु को केंद्र में मानकर उसके उत्तर में कुरु, पूर्व में भद्राश्व, दक्षिण में भारतवर्ष और पश्चिम में केतुमाल, इन चार वर्षों की कल्पना की गई है। इन चारों का सम्मिलित नाम जम्बूद्वीप था। अर्वाचीन भूगोल के अनुसार मेरु पामीर के ऊँचे पठार की संज्ञा है, जो पृथ्वी रूपी कमल के केंद्र में कर्णिका के समान स्थित है[1]। उत्तर कुरु साइबेरिया और भद्राश्व चीन है। केतुमाल पामीर के पश्चिम में फैला हुआ वह प्रदेश है जिसमें चक्षु-वक्षु या वर्तमान औक्सस नदी बहती है। मेरु के दक्षिण की ओर स्थित हिमाचल और दक्षिणी समुद्र के बीच का भू-प्रदेश पुराणों के अनुसार एक भौगालिक इकाई मानी जाती थी। उसी की संज्ञा भारतवर्ष थी। जैसा पूर्व में कहा जा चुका है, भुवनकोश के लेखक भारत वर्ष की उत्तरी और दक्षिणी सीमाओं के विषय में निश्चित और स्पष्ट उल्लेख करते हैं। उत्तर में जहाँ तक गंगा के उत्तरी स्रोत या शाखा-नदियाँ हैं और दक्षिण में समुद्र-तट पर जहाँ कन्याकुमारी है वहाँ तक भारत की सीमाएँ हैं। इसके पूर्व की सीमा पर किरात जाति के लोग बसे थे, जिन्हें आजकल की भाषा में मौन-ख्मेर कहा जाता है। भारत के पश्चिम में यवन अर्थात यूनानी बसे हुए थे[2]। यवनों से यहाँ तात्पर्य बाल्हीक (आधुनिक बल्ख, प्राचीन बैक्ट्रिया) के यूनानी राजाओं से हैं, जिन्होंने तीसरी सदी ई.पू. के मध्य भाग में मौर्य साम्राज्य के निर्बल होने पर यवन राज्य की वहां नींव डाली थी। इससे यह भी ज्ञात होता है कि भारतवर्ष के भौगोलिक विस्तार की यह कल्पना शुंग-काल से पूर्व ही स्थिर हो चुकी थी।

पाली साहित्य के 'दीघनिकाय' ग्रंथ में भारत की भौगोलिक और राजनैतिक एकता का बहुत ही सुंदर उल्लेख मिलता है–

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'तो कौन है जो उत्तर में आयताकार और दक्षिण में शकट-मुख के समान संकीर्ण इस महा-पृथ्वी को सात बराबर भावों में बाँट सकता है? महा-गोविंद को छोड़कर भला और दूसरा कौन ऐसा करने में समर्थ है? कलिंग में दंतपुर, अश्मक में पोतन, अवन्ति में माहिष्मती, सौठीर में रोरुक, विदेह में मिथिला, अंग में चंपा और काशी में वाराणसी इन्हें महा गोविंद ने बसाया[3]।'

इस उल्लेख में कई बातें महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ समस्त भारतवर्ष के लिए महा पृथ्वी शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन भारतवर्ष के लिए राजनैतिक परिभाषा में किसी राजा के अपने जनपद के राज्य-विस्तार को पृथ्वी कहते थे, जिसके कारण राजा पार्थिव कहलाता था। एक-एक जनपद का स्वामी राजा वहाँ का पार्थिव होता था। किंतु एक जनपद की सीमा से आगे बढ़कर समुद्र पर्यंत पृथ्वी के लिए महापृथ्वी शब्द का प्रयोग होने लगा था। पाणिनि की अष्टाव्यायी में महापृथ्वी के लिए ही सर्वभूमि संज्ञा का प्रयोग हुआ है। सर्वभूमि के राजा को सार्वभौम कहते थे[4]। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (30-1-1) के अनुसार सार्वभौम राजा को ही अश्वमेघ करने का अधिकार था। जो सार्वभौम होता था वही चक्रवर्ती कहलता था। महाभारत के अनुसार दौःपन्ति भरत अश्वमेघों के करने से सार्वभौम चक्रवर्ती हुआ।

दीघनिकाय में दूसरा महत्त्वपूर्ण उल्लेख महा पृथ्वी या भारतवर्ष की भौतिक आकृति के संबंध में है। अब तक इसके तीन प्रकार मिले हैं, कूर्म संस्थान, कार्मुक संस्थान और शकटमुख संस्थान। वराह मिहिर ने वृहत्संहिता में भारतवर्ष के संस्थान (अं. कनफ्युगरेशन) को कूर्म की आकृतिवाला कहा है। उस कूर्म संस्थान के नौ भेद किए हैं, अर्थात् (1)मध्यभाग, (2) पूर्व दिशा में फैला हुआ मुख, (3) दक्षिण पूर्व दिशा में दाहिना पैर, (4) दाहिनी कुक्षि, (5) दक्षिण पश्चिम का पिछला पैर, (6) पुच्छ या पुट्ठों का भाग, (7) उत्तर पश्चिम का उपरला पैर, (8) बाँईं ओर की उपरली कुक्षि और (9) पूर्व-उत्तर दिशा का अगला पैर। इस कूर्म-संस्थान के प्रत्येक भाग में जो जनपद या देश हैं उनके नाम भी अलग-अगल गिनाए गए हैं।

भारतवर्ष के संस्थान की दूसरी कल्पना पुराणों के 'भुवनकोश' नामक अध्यायों में मिलती है जहाँ इस भूमि को कार्मुक या धनुपाकृति कहा गया है। दक्षिण का घूमा हुआ भाग जो समुद्र के भीतर घुसा हुआ है वह धनुष का मुड़ा हुआ डंडा है। उत्तर का हिमालय उस डंडे के ऊपर खिची हुई डोरी है जिसकी तान से डंडे का पृष्ठ भाग मानो झुक गया है।

कूर्म संस्थान और धनुषाकृति संस्थान, इन दोनों कल्पनाओं से भी अधिक प्रत्यक्ष दीघनिकाय का उल्लेख है, जिसमें भारत के उत्तरी मैदान और पर्वतों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिले हुए भाग को आयताकार कहा गया है। इसके अग्रभाग में छकड़े के लंबे और संकीर्ण मुख की भाँति दक्षिण का भू-भाग निकला हुआ है। देश के लिए शकटमुखी संस्थान की यह कल्पना इतनी प्रत्यक्ष और सजीव है जैसे किसी अर्वाचीन मान-चित्र में भारतवर्ष की आकृति को देखकर कोई इसका वर्णन कर रहा हो।

भारत भूमि की इस प्रत्यक्ष सिद्ध भौगोलिक एकता को आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो समर्थन प्राप्त हुआ और उसकी जैसी पूर्ति हुई उसका वर्णन पहले अध्यायों में हो चुका है। राजनैतिक क्षेत्र में भी इस मौलिक एकता ने आदर्श के रूप में सदा लोगों को प्रेरित और आंदोलन किया। यह एक तथ्य है कि हमारी यह भूमि प्राकृतिक सीमाओं के विभाग से अनेक जनपदों में विभक्त थी। इस प्रकार के लगभग 200 जनपदों की सूची पुराणों के भुवनकोश नामक अध्यायों में प्राप्त होती है। जनपदों का यह बंटवारा जनता की स्वाभाविक स्थानीय आकांक्षाओं की पूर्ति करता था। वह जनता के लिए स्थानीय एकता का सुदृढ़ बंधन था। राज्यों के ऐतिहासिक विघटन के समय भी जनपदीय जीवन की इकाई ठोस चट्टान की भाँति स्थिर रहती थी। जनपदों के रूप में भारतीय जीवन की माला हिमाद्रि से कुमारी तक गूंथी गई थी। जनपदों को हम इस माला के स्थायी मनके कह सकते हैं। प्रत्येक जनपद की पृथ्वी स्थानीय जीवन के आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषा और विद्या संबंधी पहलुओं से हरी-भरी बनी रहती थी। जिस प्रकार यूनान देश में वहाँ की संस्कृति की धात्रियाँ 'सिटी स्टेट्स' या पौर-राज्य थे, ठीक उसी प्रकार भारतवर्ष के जनपद भी सांस्कृतिक और राजनैतिक इकाइयों के रूप में स्थानीय विश्व-जनता की माताएँ थीं।

किंतु जनपदों की इस विविध शृंखला को एकत्र मिलाकर किसी महान् राजनैतिक संगठन का आदर्श भी वैदिक काल से मिलने लगता है। इस संबंध में प्रत्येक राजा की ऐन्द्र महाभिषेक (राज्यासन पर आसीन होने के अभिषेक) के समय पढ़ी जानेवाली प्रतिज्ञा को हम नहीं भुला सकते। इसमें कहा है—

'जो ब्राह्मण पुरोहित यह इच्छा करे कि अभिषिक्त होनेवाला क्षत्रिय सब जितिया को जीते, सब लोकों को प्राप्त करे, सब राजाओं में श्रेष्ठता प्राप्त करे, एवं साम्राज्य भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठय, राज्य, महाराज्य, आधिपत्य, इन विभिन्न प्रकारों से अभिषिक्त होकर परम स्थिति प्राप्त करे, चारों दिशाओं के अंत तक पहुँचकर आयु पर्यंत सार्वभौम बने और समुद्र पर्यंत पृथ्वी का एकराट् बने, उस क्षत्रिय को इस ऐन्द्र महाभिषेक की शपथ दिलाकर राज्य में अभिषिक्त करना चाहिए'। इस प्रतिज्ञा में हम उन अनेक शब्दों की गूंज सुनते हैं जिनसे भारत का राजनैतिक इतिहास आंदोलित हुआ है। भारतीय इतिहास में जितने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजाओं का अभिषेक वैदिक पद्धति से हुआ सबके लिए इसी प्रतिज्ञा का उच्चारण हुआ होगा। देश की भौगोलिक एकता को इसमें स्पष्ट राजनैतिक एकता के साथ मिलाया गया है। समंत-पर्यायी सार्वभौम और समुद्र पर्यंत पृथ्वी का एकराट् ये दोनों आदर्श देशव्यापी राजनैतिक चेतना के सूचक हैं। इसी से प्रेरित होकर शकुंतला ने कहा था—

'हे दुष्यंत, मेरा यह पुत्र शैलराज हिमवंत का शिरोभूषण धारण करने वाली इस चतुरंत पृथ्वी का पालन-पोषण करनेवाला बनेगा।' हम पहले कह चुके हैं कि भरत का अजित चक्र लोक में गूंजता था। सब राजाओं को अपने वश में लाकर समस्त पृथ्वी पर फैल गया था। इसके कारण भरत सार्वभौम चक्रवर्ती कहलाए[6]। भरत से आरंभ होकर यह परंपरा और ये आदर्श और भी कितने ही राजाओं में अवतीर्ण हुए।

ऊपर लिखी हुई कई राज्य प्रणालियों में परस्पर भेद थे। 'सार्वभौम' शब्द सर्वभूमि या महापृथ्वी के राज्य की ओर संकेत करता है। सार्वभौम राजा को चक्रवर्ती भी कहा जाता था। जिसके रथचक्र के लिए अपने जनपद से बाहर कोई रुकावट न हो उसे चक्रवर्ती कहा गया जान पड़ता है। पीछे उस बढ़े हुए राजनैतिक सीमा-विस्तार या भू-भाग के लिए चक्र शब्द का प्रयोग होने लगा। सार्वभौम पद्धति में यह आवश्यक था कि राजा दूसरे राजाओं के साथ युद्ध करके या तो उन्हें अपना वशवर्ती बना ले और या बलपर्वूक उनका राज्य अपने राज्य में मिला ले। यही भरत ने किया, और कालांतर में समुद्रगुप्त ने भी इसी नीति का अवलम्बन किया। आरंभिक अवस्था में प्रायः प्रत्येक देश में भूमि अनेक जनपदीय राजाओं में बंटी हुई होती थी, उनमें से प्रत्येक की अपनी स्वतंत्र सत्ता रहती थी। उनके बीच में कोई एक शक्तिशाली राजा उठ खड़ा होता और भरत के समान ही सबसे ऊपर अपना चक्र स्थापित करके उस राजनैतिक एकता का प्रदुर्भाव करता, जिसे 'सार्वभौम' या 'चक्रवर्ती राज्य' कहते हैं। महाभारत से ज्ञात होता है कि आधिपत्य या आधिराज्य शासन प्रणाली वह थी जिसमें अन्य राजाओं से कर ग्रहण करके उन्हें अपने केंद्र में सुरक्षित रहने दिया जाता था। पांडु ने कुरु जनपद की शक्ति का विस्तार करते हुए मगध-विदेह, काशी, सुह्म, पुण्ड्र आदि जनपदों को अपना करद बना लिया। था (आदि. 105/12-21) और स्वयं अधिराज्य का भौक्ता कहलाया।

इन दोनों से अधिक कठोर साम्राज्य का आदर्श था जिसे हम जरासन्ध के जीवन में चरितार्थ देखते हैं। सम्राट् अपने जनपद की सीमओं का विस्तार करता हुआ और किसी भी राज्य को सुरक्षित न रहने देता था। सभापर्व में सम्राट् सबको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हड़पने वाला कहा गया है। (सम्राट् शब्दों हि कृत्स्नभाक्। 14/2)। साम्राज्य का आधार बल था (सभा., 14/13, बलादेव साम्राज्यं कुरुते)।

साम्राज्य से विपरीत पारमेष्ठ्य प्रणाली थी जो गण राज्यों में प्रचलित थी। यह शासन कुलों के आधार पर बनता था। इसमें प्रत्येक घर का ज्येष्ठ व्यक्ति 'राजा' कहलाता था (गृहे गृहे हि राजान; सभा. 14/2); जैसे शाक्यों में और लिच्छिवियों में प्रत्येक क्षत्रिय राजा कहलाता था। वे सब मिलकर अपने आपस में किसी एक को श्रेष्ठ मान लेते थे। वही उस समय उस राज्य का अधिपति होता था[7]। जिस प्रकार साम्राज्य शासन का आधार बल था उसी प्रकार पारमेष्ठय या गण शासन का आधार शम अर्थात् शांति की नीति थी[8]। इस देश में किसी समय कुलों पर आश्रित इस शासन प्रणाली का बहुत प्रचार था और जनता इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। कुल शासन-प्रणाली में दूसरे कुल या व्यक्ति के अनुभव या व्यक्ति-गरिमा का सम्मान किया जाता था एवं जनपद के भीतर दूर दूर-दूर तक जनता का श्रेय या कल्याण दिखाई पड़ता था (सभा. 14/3-4) साम्राज्य में यह श्रेय अधिकतर राजपरिवार या राजधानी के लोगों तक ही सिमट कर रह जाता था।

गणों की जनता कुछ इस प्रकार सोचती थी—राजनीति में शम का अवलंबन ही सच्चा शम है। मोक्ष साधन से जो शम मिलता है वह कोई शम नहीं।

भारतीय इतिहास का रंगमंच इन विभिन्न राज्य-प्रणालियों की लीला-भूमि रही है। देश की एकता का भाव न केवल धर्म के मार्ग से अग्रसर हुआ बल्कि राजाओं की राजनीति के द्वारा भी समय-समय पर उसकी स्थापना होती रही। जिस प्रकार यूनान में स्पार्टा और एथेंस अन्य पौर राज्यों के ऊपर प्रबल हो गए थे वैसे ही अपने देश में बहुत कशमकश के बाद मगध का साम्राज्य ऊपर तैर आया। वृहद्रथवंशी जरासन्ध से जो प्रवृत्ति शुरू हुई थी वही शिशुनाग और नंदवंशी राजाओं के समय में आगे बढ़ी। पहले तो इस प्रकार के विस्तार के विरुद्ध जनता में प्रतिक्रिया भी थी किंतु पीछे लोग इसके प्रति अभ्यस्त और सहिष्णु बन गए। शिशुनाग वंशी अजातशत्रु ने लिच्छिवि गण की परवाह न करके उनपर भी हमला कर दिया। ऐसे ही नंदवंश के अनंदवर्धन महापद्मनंद ने अनेक जनपदीय इकाइयों का अंत करके मगध साम्राज्य की प्रबल सत्ता स्थापित की।

इस प्रवत्ति का सबसे विकसित रूप चंद्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य में दृष्टिगोचर हुआ। ऐतिहासिक काल में सर्वप्रथम चंद्रगुप्त के राज्य में हम कई प्राचीन आदर्शों को चरितार्थ हुआ देखते हैं। उसका राज्य अफगानिस्तान से लेकर दक्षिण में मैसूर तक फैला हुआ था। जिसे सर्वभूमि या सर्व पृथ्वी कहा जाता था। उसके अंतर्गत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सच्चे अर्थों में सारे देश की गिनती होने लगी। समंत पर्यायी या चतुरंत इन प्राचीन शब्दों का जो अर्थ था उसे भी हम मौर्य साम्राज्य के चार खूंट विस्तार में पूर्ण हुआ पाते हैं। इसी प्रकार ऐतरय ब्राह्मण में समुद्र-पर्यंत पृथ्वी के एकराट् की जो कल्पना मिलती है वह भी मौर्य-शासन की सच्चाई थी। देश के सौभाग्य से किसी गाढ़े समय में मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ। उसकी स्थापना से देश यूनानियों के उस धक्के से बच गया जिसने बाहीक के संघों या पंजाब और उत्तर-पश्चिम के गणराज्यों को झकझोर डाला था।

मौर्य साम्राज्य का मधुर फल दो रूपों में प्रकट हुआ। एक तो इससे समस्त देश में समान शासन-संस्थाओं की स्थापना हो गई। शासन के कर्मचारी, विभाग, आय के साधन, कर-व्यवस्था, यातायात के मार्ग, दंड और व्यवहार, दीवानी और फौजदारी की न्यायव्यवस्था, नाप-तौल और मुद्राएँ इन सब बातों में देश ने एकसूत्रता का अनुभव किया। इससे जनता के जीवन को एकरूपता प्रदान करने वाले बंधन दृढ़ हुए। विष्णुगुप्त का अर्थशास्त्र साम्राज्य के मंथन से उटभूत उस एकरूपता का परिचायक महान् ग्रंथ है। उदाहरण के लिए, मौर्य-साम्राज्य में जो सिक्के चालू थे उनके बहुत से निधान (ज़खीरी) तक्षशिला से लेकर राजस्थान, मगध, कलिंग, मध्यभारत, महाराष्ट्र, आंध्र, हैदराबाद, मैसूर आदि प्रदेशों में पाए गए हैं। चाँदी की इन आहत मुद्राओं की तौल सब जगह 32 रत्ती थी। उनपर बने हुए रूप या चिह्न भी सब जगह एक से पाए गए हैं। ज्ञात होता है कि शासन की किसी केंद्रीय कर्मशाला में तैयार होकर दूरस्थ स्थानों को भेजे गए थे।

मौर्य साम्राज्य का दूसरा सुफल यह हुआ कि उससे देश में अंतर्राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई। भारतवर्ष की जनता अपने चारों ओर के देशों से सच्चे अर्थ में परिचित हुई। भारतवर्ष से जानेवाले लंबे राजमार्ग और अधिक लंबे होकर दूसरी राजधानियों से जुड़ गए जिनके द्वारा यहां का व्यापारिक यातायात विदेशों के साथ बढ़ा। उन्हीं मार्गों से विदेशी-दूत-मंडल साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र की ओर मुड़े और भारतवर्ष से अनेक धर्म-प्रचारक विदेशों में गए। सम्राट् अशोक भारतीय साम्राज्य-प्रणाली के सबसे अधिक सुंदर और मधुर फल कहे जा सकते हैं। देहरादून के समीप यमुना के किनारे कालसी के शिलालेख में इन पाँच विदेशी राजाओं के नाम गिनाए गए है—(1) सीरिया और पश्चिमी एशिया के राजा अंतियोक (231-46 ई.पू.), (2) मिश्र के तुलमय या टालेमी (285-247 ई.पू.), (3) मेसीडोनिया के अंतिकिन (276-239 ई.पू.), (4) साइरीनी (उत्तरी अफ्रीका) के मग (300-250 ई.पू.) और (5) कोरिन्थ के अलिकसुंदर या एलेक्जेंडर (252-244 ई.पू.)। यह तेरहवाँ शिलालेख लगभग 252-250 ई.पू. में उत्कीर्ण कराया गया जबकि ये सब राजा एक साथ

RajGuru Math, Shiyala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवित रहे होंगे। अशोक के भेजे हुए दूत-मंडल इनके दरबारों में शांति और मानवता का मैत्री संदेश लेकर गए थे। उस समय के सभ्य संसार को अपनेसाथ लेकर आगे बढ़ने का संकल्प अशोक के मन में आया था। बौद्ध-आख्यानों में, जो अशोकावदान के नाम से प्रसिद्ध हैं, और भी उल्लेख हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि अशोक के प्रयत्नों से भारत का संबंध तिब्बत, बर्मा, सिंहल, स्याम, कंबोज आदि देशों से जुड़ गया था और भारत से धर्म और संस्कृति की धाराओं का यशःप्रवाह इन पड़ोसी देशों में भी फैल गया था।

इस प्रकार पहली बार वह कल्पना ऐतिहासिक सत्य के रूप में उभर कर सामने आ गई जिसने जम्बूद्वीप के देशों की महती माला में भारत को मध्यमणि बना दिया। उसका वह ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और वरिष्ठ रूप आनेवाली शताब्दियों में और भी निखरता गया। सचमुच भारत की पृथ्वी अठारह-द्वीपों की अष्ट-मंगलक माला पहननेवानी बन गई[9]। गुप्तों के स्वर्णयुग में भारत का वह दिव्य भास्कर तेज मध्य एशिया से हिंद एशिया तक (जो उस समय भारतीय भूगोल में द्वीपान्तर के नाम से प्रसिद्ध थी[10]) और चीन से ईरान तक सर्वत्र छा गया था जैसा पहले अध्यायों में दिखाया गया है। इस देश की वह सबसे महती धर्म-विजय थी। बाहर इस सिद्धि के प्राप्त कराने में देश के भीतर का गुप्तों का एकछत्र शासन और सुसमृद्ध राज्य भी कुछ कम उत्तरदायी न रहा होगा। कालिदास ने 'एकात-पत्रं जगतः प्रभुत्वम्' के आदर्श में (रघु. 2/47) अपने युग के भावों को ही व्यक्त किया है। भौगालिक दृष्टि से यह प्रभुत्व अपने देश के भीतर ही सीमित था किंतु सांस्कृति आदर्श भारत के विश्वराज्य को चरितार्थ करता था। उस महाकवि ने अपने युग की इस सच्चाई की ओर अन्य प्रकार से भी संकेत किया है। पुराणों ने जहाँ एक ओर हिमालय को भारत के धनुषाकृति संस्थान की तनी हुई प्रत्यंचा कहा है, वहाँ कालिदास ने उसे पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच में व्याप्त पृथ्वी का मानदंड कहा है[11]। (3) यदि हिमालय रूपी मानदंड के दोनों सिरों पर उत्तर-दक्षिण की ओर रेखाओं का विस्तार किया जाए तो उनसे जो भू-खंड परिच्छित होगा उसे भी गुप्तकाल में भारतीय संस्कृति या उस युग के शब्दों में धर्म-राज्य का भू-विस्तार समझना चाहिए। गुप्तकाल में हिमवान् सचमुच भारत की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई का मापदंड था। पूर्व में किरात देश और पश्चिम में अफगानिस्तान में हिमालय के भाग हिंदूकुश, वाल्हीक तक हिमवन्त का विस्तार था। उतना ही उस समय भारतवर्ष था किंतु स्थूल भौगोलिक विस्तार पर आग्रह इस देश की पद्धति नहीं रही। यहाँ तो यश-विस्तार, धर्म-विस्तार या संस्कृति विस्तार जो पर्यायवाची हैं, महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। उसका संकेत करते हुए कालिदास ने लिखा—'वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यश पर्वतों को लांघकर और समुद्रों को पार कर उनके उस ओर पहुँच गया। पाताल और स्वर्ग में भी वह भर गया। देश और काल में उस यश के विस्तार की कोई सीमा न रही[12]। आज मध्य एशिया और हिंदेशिया के पुरातत्वगत अवेशष कालिदास के कथन की प्रत्यक्ष व्याख्या करते हैं।

इस सांस्कृतिक विस्तार की सच्ची प्रतीति उस युग की जनता के मन में थी। इसका सबसे पक्का प्रमाण इस बात से मिलता है कि उस युग में भारत का भौगोलिक अर्थ ही बदल गया था। भारत के अंदर वृहत्तर भारत का भी परिगणन होने लगा था। गुप्त युग के पुराण लेखकों ने भारत की निजी भूमि के लिए कुमारी द्वीप नाम प्रचलित किया और उसके साथ पूर्वी-द्वीप समूह या द्वीपान्तरों को मिलाकर वृहत्तर भारत के अर्थ में 'भारत' शब्द का प्रयोग शुरू किया (दे. पूर्व पृ. 55)। अपने युग के इस आदर्श का बौद्ध साहित्य में भी उल्लेख हुआ है। ललित-विस्तर में एक कल्पना है कि कोई दिव्य चक्र-रत्न धर्म-विजय करते हुए चारों दिशाओं में घूमता है। उससे मूर्धाभिषिक्त धर्मात्मा राजा पूर्व दिशा को जीतता है। पूर्व दिशा को जीतकर पूर्व समुद्र में प्रविष्ट होकर उसे भी पार कर जाता है। इसी प्रकार वह दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा को भी जीतकर उन-उन समुद्रों का अवगाहन करता है[13]।

वस्तुतः उस युग के साहित्य में भारत के भीतरी और बाहरी भू-प्रदेश की भौगोलिक एकता के पारस्परिक घनिष्ठ संबंध बार-बार उभर आते हैं। इंदुमती के स्वयंवर में देश के सब राजाओं को एकत्र कर कवि ने मातृभूमि का एक समुचित चित्र उपस्थित किया है। पुष्पपुर के मगध-श्वर, अंगदेश (मुंगेर, भागलपुर) के राजा, महाकाल और शिप्रा के स्वामी अवन्तिनाथ, माहिष्मती के अनूपराज, मथुरा, वृंदावन और गोवर्धन के सूरसेनाधिपति, महेंद्र पर्वत और महोदधि के स्वामी कलिंगनाथ, उरगपुर और मलय स्थली के पांड्यराज एवं उत्तर कोसल के अधीश्वर, इन सबको इंदुमती के स्वयंवर में एकत्र लाकर कवि मगधेश्वर के लिए कहता है—कामं नृपाः संतु सहस्त्रशोऽन्ये राजन्वती माहुरनेन भूमिम् (रघु. 6/22)। 'और सहस्त्रों राजा भी चाहे हों, यह भूमि मगध के सम्राटों से ही राजवन्ती कहलाती है।' देश की राज्यशक्तियों में उस समय मगध का जो सर्वोपरि स्थान था उसका यथार्थ उल्लेख कवि के शब्दों में है। विदर्भ जनपद की राजकुमारी के स्वयंवर का क्षितिज उत्तर केसल से दक्षिण के पांड्य देश तक विस्तृत था। इससे स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवहार और राजनैतिक संबंधों की दृष्टि से अपनी आंतरिक सीमाओं के भीतर भारत की भूमि दृढ़ इकाई बन चुकी थी।

दूसरी ओर जब हम विदेशों के साथ भारत के संबंधित हो जाने की बात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोचते हैं तो भारतीय साहित्य में उसकी भी साक्षी उपलब्ध होती है। इसका अच्छा उदाहरण दिग्वर्णन के रूप में पाया जाता है। गुप्तकाल में जब ईरान से जावा तक भारत का यातायात फैल गया था, उस समय के सांयात्रिक नाविकों अथवा स्थल-मार्ग से यात्रा करनेवाले सिद्धयात्रिक सार्थवाहों के उपयोग के वास्ते ये दिग्वर्णन संकलित किए गए होंगे। इनमें चारों दिशाओं में भारत के भीतर और बाहर के प्रसिद्ध स्थानों और देशों का एक ढर्रा-सा पाया जाता है। पूर्व दक्षिण, पश्चिम, उत्तर इस प्रदक्षिणा क्रम से ये दिग्वर्णन मिलते हैं। इस दिग्वर्णन के कई रूप साहित्य में पाए गए हैं। एक रूप बुद्धस्वामिन् के 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' नामक ग्रंथ में है। रामायण के किष्किंधा कांड में सुग्रीव द्वारा चारों दिशाओं में सीता की खोज के लिए बंदरो के भेजे जाने के प्रसंग में भी दिग्वर्णन आया है। वहाँ पूर्व दिशा का वर्णन करते हुए जावा के सप्त राज्यों का उल्लेख है। ये राज्य तीसरी-चौथी सदी से पहले जावा में न थे। महाभारत के वनपर्व में गालब-चरित के अंतर्गत गरुड़ ने गालब से दिग्वर्णन किया है। उसमें पश्चिम दिशा में हरिमेधस् देव का उल्लेख है जिसकी ध्वजवती नामक कन्या पर सूर्य मोहित हो गए थे और वह सूर्य के आदेश से आकाश में ही खड़ी हो गई थी। हरिमेधस देव ईरानी अहुर्मज्दा का ही रूप है जिसे गुप्तों के समकालीन ईरान की पहलवी भाषा में हरमुज़ कहते थे। सभापर्व के दिग्विजय पर्व के अंतर्गत भी एक दिग्वर्णन है जिसमें भारतवर्ष की भौगोलिक इकाई को बढ़ाकर विदेशों के साथ मिलाया गया है। वहाँ उत्तर दिशा की ओर दिग्विजय करते हुए अर्जुन की यात्रा पामीर (कंबोज) और मध्य एशिया के उस पार के प्रदेश (उत्त कुरु) तक जा पहुँचती है जहाँ ऋषिक नाम से विख्यात यू-चि जाति का मूल आवास स्थान था। यहीं गोबी और मंगोलिया के बीच में कही चंद्रद्वीप था जहाँ से निकास होने के कारण भारत के कनिष्क आदि शक-तुषार राजा चंद्रवंशी कहलाते थे। इस प्रकार भारत की स्थिति उस पट-मंडप के समान थी जिसके दीप्तिपट प्रकाश और वायु का आवाहन करने के लिए चारों दिशाओं में उन्मुक्त हो गए थे। भारत के जल और स्थल मार्गों पर इस समय अभूतपूर्व चहल पहल दिखाई देती थी। एक ओर राजदरबारों में विदेशी दूत-मंडलों के आने-जाने का ताँता लगा रहता था[1], दूसरी ओर भारतीय समुद्रतट के पोतपत्तन नानादेशीय व्यापारियों से भरे रहते थे। जब इन दूत-मंडलों का अदान-प्रदान हो रहा था, उस समय अंतर्राष्ट्रीय जगत् में भारत की ख्याति किसी जनपद के रूप में न थी बल्कि उसे महान् देश की प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। भारतीय-दूत, भारतीय-पोत, भारतीय विद्वान्—इन सब पर भारत के एक खंड की सीमित छाप न थी, वे अपने साथ समग्र देश की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा लेकर विदेशों में पहुँचते थे। जनता के मनोराज्य में देश की सत्ता एक और अविकल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी। तभी देश के प्रत्येक भाग से झुण्ड-के-झण्ड ब्राह्मण दूसरे भागों में जाकर बस जाते थे और राजाओं द्वारा उनके लिए भूमि और जीविका का प्रबंध किया जाता था। समतट के ब्राह्मण राजकुल में जन्मे हुए शीलभद्र विद्वान् नालंदा विश्वविद्यालय में आकर वहाँ के आचार्य हो गए। काश्मीर के विद्वान् बिल्हण (11वीं सदी) कल्याणी के चालुक्यवंशी सम्राट् विक्रमादित्य षष्ठ (1076-1129) के राजकवि के रूप में 'विद्यापति' पदवी से सुशोभित हुए। बिल्हण ने विक्रमांकदेव चरित काव्य में करहाट की राजकुमारी चंद्रलेखा के स्वयंवर में देश का जो चित्र खींचा है वह कालिदास के इंदुमती स्वयंवर का ही परिवर्तन रूप है। वहाँ मंडप में अयोध्या, चेदि, कान्यकुब्ज, चर्मण्वती तटदेश, कालञ्जरगिरि, गोपाचल, मालव, गुर्जर, पांड्य, चोल, देशों के राजा उपस्थित हुए थे। वह स्वयंवर समान देश की समान सामाजिक रीति-नीति की ओर संकेत करता है।

मध्यकाल की राजनीति जिस प्रकार देश की एकता को व्यक्त करती है, वह विक्रमादित्य चालुक्य, राजराज चोल, राजेंद्रचोल, सिद्धराज, भोज, कर्ण, गांगेय देव, गोविंदचंद्र, राजराज चोल, विग्रहपाल आदि की दिग्विजय पद्धति, राज्य-प्रणाली, गुणग्राहकता, धार्मिकजीवन, पारिवारिक जीवन रूपी सहस्त्रों विशेषताओं से प्रकट होता है। सर्वत्र एक समान आदर्श और एक-सी जीवन-विधि पाई जाती है, जैसे देशव्यापी किसी विराट् परिषद् ने राजा और प्रजा के चरितों को एकता के साँचे में ढाल दिया हो। उन चरितों के सैकड़ों बाह्य रूप और मन की प्रेरणाएँ सर्वत्र समान हैं। शासन-प्रणाली की जिस एकरूपता की ओर देश बढ़ रहा था उसका एक अच्छा उदाहरण समस्त देश में भूमि का बन्दोबस्त और कर-निश्चित के रूप में मिलता है। इसे 'ग्राम-संख्या' कहा जाता था। इसका अर्थ अंग्रेजी के हिसाब से लैंड-सर्वे किया जा सकता है। शुक्रनीति से यह सूचित होता है कि इस प्रकार की एक ग्राम संख्या गुप्त-काल के लगभग की गई थी, जिसमें प्रत्येक ग्राम, मंडल, प्रदेश आदि द्वारा देय भूमि-कर चाँदी के कार्षापण सिक्कों में निश्चित कर दिया गया था। ये-ये संस्थाएँ उस-उस राष्ट्र या प्रदेश के नाम के साथ शिलालेखों में जुड़ी हुई मिलती हैं, जैसे ऐहोली के लेख में महाराष्ट्र की तीन भागों की ग्राम-संख्या अर्थात् भूमि का लगान 99 सहस्त्र कहा गया है। मध्यकाल अर्थात् दशमी सदी के लगभग फिर इस प्रकार का बन्दोबस्त हुआ जिसका उल्लेख 'अपराजित पृच्छा' नामक ग्रंथ में आया है। वहाँ स्पष्ट कहा है कि ग्रामसंख्या, देश-प्रमाण और राजाओं का मान, तीनों का आधार 'रूप' था—ग्रामाणां च तथा संख्या देशानां च प्रमाणतः। राज्ञां च युक्तिमानं च अलंकारैस्तद्रूपतः (अपराजितपृच्छा 38/2)। यहां रूप शब्द का अर्थ रुपया अर्थात् आज-कल की परिभाषा में जमाबंदी है। राजाओं के युक्तिमान अर्थात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छुटाई-बड़ाई के आधार पर दरबार आदि में इनका सम्मान इसी बात पर आश्रित था कि उनके राज्य की आय क्या थी। सामंत, मांडलिक, महामांडलिक, नृप, महाराजा आदि पद आय के हिसाब से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने जाते थे। इसी हिसाब से सामंत, मांडलिक या राजा लोक मुकुट आदि आभूषणा भी भिन्न-भिन्न प्रकार के पहनते थे, जिससे प्रतिहारी भी स्वागत-सत्कार के समय उन्हें पहचान लेते थे, जिसका उल्लेख 'मानसार' नामक ग्रंथ में आया है (अध्याय 49)। अपराजित पृच्छा में देश के मुख्य-मुख्य भागों की ग्राम संख्या या जमाबंदी दी हुई है, जैसे कान्यकुब्ज 36 लाख, गौड़ 18लाख, कामरूप 9 लाख, मंडलेश्वर 18 लाख, कार्तिकपुर 9 लाख, चोलदेश 72 लाख, दक्षराज्य 7॥ उज्जयिनी 18,92,000, शाकम्भर 1,25,000, लाट गुर्जर, कच्छ, सौराष्ट्र सम्मलित 2 लाख, मरुकोटी और मरुमंडल (मेवाड़,मारवाड़) 3॥ लाख, सिंधुसागर3॥ लाख, खुरषाण 40 लाख, विगर्त 2 लाख, अहिराज्य 12 लाख, गुणाद्वीप 6॥ लाख, जलंधर॥ लाख, कश्मीर-मंडल 66,180। इस प्रकार इन 21 राज्यों की आय की ग्राम-संख्या या भूमिकर 2,69,33,180 होता है। स्कंदपुराण के माहेश्वर खंड के अंतर्गत कुमारिका- खंड के अध्याय 39 में कुमारी द्वीप अर्थात् भारत-देशों की ग्राम संख्या का योग 99 करोड़ कहा गया है, किंतु प्रत्येक के लिए दी ग्राम-संख्याओं का योग 28 करोड़, 80 लाख, 89 हजार, होता है। कुमारिका खंड में तो पत्तन अर्थात् समुद्रपत्तन जल पत्तन या पोत पत्तनों में चुंगी से होनेवाली आय भी 72 लाख कही गई है (39/163)। अवश्य ही ये संख्याएँ तभी संभव है जब समस्त देश में राजनैतिक और आर्थिक एकसूत्रता जीवन की वास्तविक सच्चाई बन चुकी हो। मध्यकालीन हिंदूराज्यों की इन संख्याओं की परंपरा में ही 'आईन-अकबरी' की वह संख्या है, जिसमें इलाहाबाद, आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद, बिहार, बंगाल, दिल्ली काबुल, लाहौर, मुल्तान, मालवा, साम्राज्य के इन बारह सूबो की कुल आय 3,62,97,55,246 दाम अर्थात् 9,07,43,881 रुपए कही गई है। पीछे से बरार, खानदेश और अहमदनगर इन तीन सूबों के और आ जाने से राज्य की आय में वृद्धि हुई होगी।* ये आँकड़े ऊपर लिखे हुए इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में बंटे होने पर भी सामूहिक चेतना विद्यमान थी, जिसके अनुसार खुरासान, बल्ख और पामीर प्रदेश से लेकर लंका तक के भू-भाग को एक ही देश अर्थात् कुमारी-द्वीप के अंतर्गत माना जाता था। कुमारिका-खंड की सूची में चार दिग्भागों के बनाने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण नाम दिए है:—नेपाल, गाजनक गाजना या गजनी) कंबोज, वाल्हीक (बल्ख बुखारा), कश्मीर, ब्राह्मण वाहक (बहमन वह या ब्राह्मणावाद सिंध, राजशेखर का ब्राह्मणवह), सिंधु—अति सिंधु (अर्थात् सिंधु के इस पार उस पार के देश) कच्छ, सौराष्ट्र, कोंकण, कर्णाट, लंका, सिंहल द्वीप, पांड्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पांसुदेश (उड़ीसा का पांसराष्ट्र), कामरूप, गौड़ वरेन्दुक (वारेन्द्री, पूर्व-बंगाल), किरात विजय (आसाम-तिब्बत की सीमा का प्रदेश), अश्वमुख देश (किन्नरों का देश रामपुर वशहर)—इस प्रकार भारत देश की परिक्रमा इन नामों में आ जाती है।

इस देश की इतिहास-गंगा का प्रवाह हिमालय के ऊँचे शिखरों से उतर कर गंगासागर तक प्रवाहित होता रहा है। कहाँ एक ओर वैदिक काल और कहाँ दूसरे छोर पर मध्यकालीन जीवन और संस्कृति? किंतु यह निश्चत है कि भारतीय संस्कृति अनंत भेदों के बीच में भी भौगोलिक एकता और समानता की स्वीकृति और आग्रह के उस व्रत से कभी विचलित नहीं हुई जिसे उसके मनीषी विप्रों ने ऋग्वेद में ही उसके लिए स्थिर कर दिया था—

समान मंत्र; समान समिति;
समान मन—ऐसा सबका चित।
सबके लिए समान मंत्र अभिमंत्रित।
सबकी समान हवि से यह अग्निहोत्र प्रवृत्त।

समान सबकी प्रेरणा;
समान सबके हृदय;
समान सबके मानस;
अतः साथ सबीक स्थिति॥*

संदर्भ

1. जम्बुद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्य स्थितः।
तस्यापि मेरुमैंत्रेय मध्ये कनकपर्वतः॥
भू मद्यस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकार संस्थितः॥ विष्णुपुराण, 2-2/3,10
2. आयतो ह्याकुमारिक्यादागंगा प्रभवाच्च वै।
पूर्वे किरता यस्तान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः।
आयस्तु कुमारीतो गंगायाःप्रवहावधिः।
वायु. 45/81-82
भारतवर्ष की यह भौगोलिक परिभाषा मत्स्यपुराण में भी दी हुई है। 114-10
3. को नु खो भो पहोति इमं महा पर्वत उत्तारेन आयतं दक्खिणेन
सकटमुखं सत्तधा समं सुविभत्तं विभजितु ति।
तत्र सुदं मज्झे रेणुस्स रञ्जो जनपदो होति।
दंतपुरं कलिंगानां अस्सकानञ्च पोतनं।
माहिस्सती अवन्तीनं सोवीराजञ्च रोरुकं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिथिला च विदेहानं चम्पा अङ्गेसु मापिता।
वाराणसी च कासीन एते गाविंद मापिता ति॥—(दीघनिकाय महागोविंदसुत्त)

4. सर्वभूमि पृथिवीभ्यामणञौ। 5/1/41
तस्येश्वरः 5/1/42
सर्व भूमेरीश्वरः सार्वभौमः। पृथिव्या ईश्वरः पार्थिकः।

5. स य इच्छेदेवंविक्षत्रिय मयं सर्वा जितीर्जयेतायं स सर्वाल्लोकान्विन्देतायं सर्वोपां राज्ञां श्रेष्ठ्यमतिष्ठां परमतां गच्छेत् साम्राज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं परमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समंत पर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुष आऽन्तादा परार्धात्पृथिव्यै समुद्र पर्यन्ताया एकराडिति तमेते नैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वा (ऐतरेय ब्राह्मण 8/15)

6. तस्य पत्प्रथितं चक्रं प्रावर्तत् महात्मनः।
भास्वरं दिव्यमजितं लोक सन्नादनं महत्॥
स विजित्य महीपालाञ्चकार वशवर्तिनः।
स राजा चक्रवर्त्यासीत् सार्वभौमः प्रतापवान्॥ (आदि. 69/45-47)

7. एवमेवाभिजानन्ति कुले जाता मनस्विनः।
कश्चित्कदाचिदेतेषां जनार्दन॥ (सभा. 14/6)

8. शममेव परं मन्ये न तु मोक्षाद्भवेच्छमः। (सभा. 14/5)

9. अपि च तवाष्टादश-द्वीपाष्टमंगलक-मालिनी मेदिनी अस्त्येव विक्रमस्य वियय:।
हर्षचरित में बाण की कल्पना, उच्छ्वास 6, पृ. 185

10. प्राचीन जावा की भाषा में इसे भूम्यन्तर और नुसान्तर कहा गया है। जावा की भाषा में नुसा=द्वीप।

14. अस्त्युतरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयों नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः— (कुमार. 1/1)

12. आरूढ़ मद्रीनुदधीन्वितीर्णं भुजंगमानां वसितं प्रविष्टन्।
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुवन्धि यशः परिच्छेत्तु मियत्तयालम्॥
(रघुवंश, 6/77) वाण ने भी कालिदास के स्वर में स्वर मिलाते हुए दिलीप के विषय में लिखा—भ्रू लतादिष्टाष्टादश द्वीपे दिलीपे
(हर्षचरित, उच्छ्वास 6, पृ. 179)

13. एवं खलु राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तो पूर्वा दिशं विजयति।
पूर्वां दिशं विजितः पूर्व समुद्रमवगाह्य पूर्वं समुद्रमवतरति दक्षिणां
दिशं पश्चिमामुत्तरां दिशं च विजित्य उत्तरं समुद्रमवगाहते—(ललित विस्तार, पृ. 15)। इसी भावना का समर्थन वाण की इस कल्पना से होता है—हर्ष का फड़कता हुआ दक्षिण भुजदंड प्रार्थना कर रहा था कि मुझे अट्ठारह द्वीपों की विजय करने के अधिकार पर नियुक्त कीजिए (नियुज्य तत्काल स्मरण स्फुरणेन कयितात्मानमिद चाष्टादश द्वीप जेतव्याधिकारे दक्षिणं भुजस्तम्भमृ, हर्षचरित, उच्छ्वास 7, पृ. 203)।
वाण ने इस युग में जनता के विदशों में यातायात को देखते हुए 'सर्वद्वीपान्तर संचारी पादलेप' इस साहित्यिक अभिप्राय का उल्लेख किया है (अर्थात् पैरों में कुछ ऐसा लेप लगाना जिससे सव द्वीपान्तरों में घूम आने की सामर्थ्य प्राप्त हो, हर्षचरित, उच्छ्वास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

6, पृ. 194)। वहीं समुद्र यात्रा से लक्ष्मी संप्राप्ति (अब्भ्रमणेन श्रीसमाकर्षण, पृ. 189) का भी उल्लेख है।

14. चीन की अनुश्रुतियों के अनुसार, चीन-सम्राट् हो-ति के समय (89-105 ई.) में भारतीय राजदूत चीन गए। मिलिन्दपन्ह के अनुसार, चीनी सम्राट् हुआङ्ति के दरबार में महाक्षत्रप रुद्रदामा के दूत सिंधुप्रांत से उपहार लेकर गए थे। लगभग 190 ई. में अलेक्जैंड्रि के शासक द्वारा भेजा हुआ पैंटेनस नामक राजदूत भारत आया। लगभग 336 ई. में सम्राट् कौंस्टैंटाइन के यहाँ भारतीय प्रणिधिवर्ग पहुँचा। 518 ई. में उत्तरी वई वंश की चीन-सम्राज्ञी द्वारा भेजा हुआ सुङ्युन नामक दूत पश्चिमी भारत आया। 530 ई. में भारतीय राजदूत उपहार लेकर कुस्तुंतुनिया के सम्राट् जुस्टीनियन के दरबार में पहुँचे। 541 ई. में भारतीय राजदूत चीनी सम्राट् थायूचुङ के दरबार में पहुँच गए। 607 ई. में सिंहल के हिंदू शासक के दरबार में चीन सम्राट का भेजा हुआ दूत-मंडल आया। चालुक्यसम्राटे पुलकेशिन् द्वितीय के दरबार में ईरानी सम्राट् खुसरू परवेज (595-625) का भेजा हुआ प्रणिधि वर्ग आया। 641 में हर्ष का ब्राह्मण राजदूत चीन गया और 645 में चीन सम्राट् का प्रणिधिवर्ग सम्राट् हर्ष के दरबार में आया। वाण ने तो हर्षचरित में स्पष्ट लिखा है कि सब देशों से आए दूत-मंडल हर्ष के दरबार में ठहरे हुए थे (सर्वदिशान्तरागतैश्च दूत मण्डलैरुपास्यमानम्, हर्ष, उच्छ्वास 2, पृ. 60) यह सिलसिला इसी प्रकार आगे भी जारी रहा। सुमात्रा और यवद्वीप के शासक शैलेन्द्रवंशी राजा वालपुत्रदेव ने मुंगेर के राजा देवपालदेव के पास दूत भेजकर नालंदा विश्वविद्यालय में चातुर्दिश भिक्षुसंघ के लिए पाँच गाँव दान में देने का ताम्रपट्ट प्राप्त किया जो नालंदा महाविहार की खुदाई में प्राप्त हुआ है। 'भारत का विदेशों के साथ प्रणिधि-संबंध', ना. प्र. पत्रिका, विक्रमांक उत्तरार्ध, संवत् 2001, पृ. 270-274 से उद्धृत।—भा.12

* शुक्रनीति, अपराजितपृच्छा, और स्कंदपुराण में देश की आय के आँकड़ों का आधार 32 रत्ती की तोल का चाँदी का कार्षापण सिक्का था। आईन-अकबरी में उसका आधार 80 रत्ती का रुपया है। इस हिसाब से स्कंदपुराण में दी हुई 28 करोड़, 80 लाख, 89 हजार की आय आईन-अकबरी की 9 करोड़ रुपयों की आया के साथ लगभग ठीक बैठती है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि भूमि के लगान की रकम राज्यों के उलट-फेर हो जाने पर भी पहले जैसी ही निश्चित रहती थीं, क्योंकि उसका आधार भूमि कीउपज का षष्ठांश था जिसमें बहुत हेर-फेर की गुंजायश न थी।

* समानो मंत्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभिमंत्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी व आकूतिः समान हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ —(ऋ. 10/191/3-4)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय-10

उपसंहार

पूर्व लिखित वर्णन से यह स्पष्ट होगा कि भारत की सांस्कृतिक एकता का ही दूसरा नाम उसकी मौलिक एकता है। यह सांस्कृतिक एकता जिस भू-प्रदेश में व्याप्त हुई उसका भौगोलिक नाम भारतवर्ष है। भारत का समस्त भू-खंड चाहे एक राजनैतिक चक्र अथवा शासन के अधीन न भी रहा हो तो भी यहाँ की कोटि-कोटि जनता के मन में भारत की मौलिक एकता का गहरा संस्कार था। राष्ट्र की अनेक संस्थाओं के रूप में यह सत्य प्रमाणित हुआ। विष्णु पुराण के लेखक ने इसी एकता की ओर लक्ष्य करते हुए लिखा–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे। (विष्णु. 2/3/24)

इसमें पृथक्-पृथक खंड की कल्पना नहीं है। उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण देश, उड़ीसा, बंगाल या बिहार में जिसने जन्म लिया है वह धन्य है, ऐसा यहाँ नहीं कहा गया। कवि की दृष्टि में समस्त भारत भूमि ही धन्य है। इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए गुजरात के महाकवि नरसी मेहता ने जिनकी गणना राष्ट्रीय कवियों में करते हैं, गाया–

"भरत खण्ड भूतल मां जनम्यो।"

'भरतखंड के भूतल में मैंने जन्म लिया।' यही भाव जन-जन के मन में बसा हुआ था। देश के नाम के साथ अनुस्यूत जनता का नाम भारती प्रजा पड़ा–

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥ (विष्णु 2/3/1)

वायु, मत्स्य मार्कण्डेय, सभी पुराण इसी परिभाषा का अनुकरण करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारी भूमि का दूसरा महान् सत्य उसकी विविधता है। अनेक भाँति के भेदों को हमने पाया और उन्हें सहर्ष स्वीकार किया। जन, धर्म, भाषा के भेदों का उल्लेख अथर्ववेद में आया है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। उसकी व्याख्या और विस्तार में कितना कुछ कहा जा चुका है। और आगे भी कहा जा सकता है।

किंतु भारतवर्ष को प्रकृति द्वारा जो पार्थक्य मिला यहाँ के मानव ने हृदय की शक्ति से उन भेदों के भीतर पैठकर निगूढ़ एकता को ढूंढ़ निकाला। हमारी राष्ट्रीय संस्कृति का यही तृतीय सत्य है। यह संस्कृति भेदों को स्वीकार करती है किंतु उसकी निजी विशेषता एकत्व की प्राप्ति है। एकत्व के विषय में जो ध ार्म और दर्शन का सत्य था वही समाज, राजनीति और जीवन का सत्य भी बना—

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्चतः (ईश उप.) ,

जो एकत्व दर्शी है उसके मन में अपनों से मोह और दूसरों से शोक कहाँ?

यहाँ के विचारशील पुरुष भेदों के कारण मोह को प्राप्त नहीं हुए। जो पार्थक्य था उसे अपने-अपने स्थान में सुरक्षित और मर्यादित करके सब को ऐक्य के अंतर्गत लाने का प्रयत्न ही भारतीय इतिहास की विशेषता है। श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी अप्रतिम शैली में राष्ट्रीय संस्कृति के इस महान् उपनिषद् को इस प्रकार व्यक्त किया है—"विधाता भारतवर्ष में नाना विचित्र जातियों को खींच लाए हैं। जो ऐक्यमूलक सभ्यता मानवजाति की चरम सभ्यता हो सकती है, भारतवर्ष ने सदा नाना उपकरणों की सहायता से उसी की भित्ति खड़ी करने का प्रयत्न किया है। पराया कहकर उसने किसी को भी दूर नहीं किया; असंगत मानकर भी किसी का उपहास नहीं किया। भारवर्ष ने सभी कुछ को ग्रहण किया है, सभी कुछ को स्वीकार किया है। इतना कुछ ग्रहण करके भी आत्मरक्षा करने के लिए यह आवश्यक है कि इस पूञ्जीभूतसामग्री में अपनी विशिष्ट व्यवस्था, अपनी शृंखला की स्थापना की जाए—इसे किसी एक मूलभाव द्वारा गूंथ कर रखा जाए। उपकरण कहीं का भी क्यों न हो, यह शृंखला—यह मूलभाव—भारतवर्ष का ही है।

पराए को अपना बनाने में प्रतिभा की आवश्यकता होती है। हमें भारतवर्ष में इसी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। भारतवर्ष ने निःसंकोच भाव से दूसरे के भीतर प्रवेश किया है और अनायास ही दूसरे की सामग्री को अपनाया है। भारतवर्ष ने पुलिन्द , शवर, व्याघ आदि जातियों से भी वीभत्स सामग्री संग्रह करके उनमें अपना भाव प्रसारित किया है—उनके भीतर भी अपनी अमूल्य आध्यात्मिकता को अभिव्यक्त किया है। भारत ने कुछ भी त्याग नहीं किया और जो कुछ भी ग्रहण किया, सो उसे अपना बनाकर ग्रहण किया।

भारतवर्ष की प्रधान सार्थकता क्या है? यदि कोई इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जानना चाहे, तो उत्तर दिया जा सकता है, और भारतवर्ष का इतिहास उसी उत्तर का समर्थन भी करेगा। हम देखते हैं कि भारतवर्ष ने सदैव प्रभेद के बीच ऐक्य स्थापना की चेष्टा की है, नाना पथों को सदा उसी एक लक्ष्य की ओर अभिमुख किया है और अनेक के बीच एक को निःसंशय भाव से अंतरमन में प्राप्त किया है। भारतवर्ष ने बाहर के समस्त प्रतीयमान पार्थक्य को नष्ट किए बिना उसके अंतर के निगूढ़ योग पर अधिकार किया है।

पृथ्वी के सभ्य समाज में भारतवर्ष अनेक को करने के आदर्श के रूप में विराजमान है, उसके इतिहास से यही सत्य प्रतिपन्न होगा। एक को विश्व में और अपनी आत्मा में अनुभव करना, ज्ञान के द्वारा आविष्कृत करना, कर्म के द्वारा प्रतिष्ठित करना, प्रेम के द्वारा उपलब्ध करना और जीवन के द्वारा प्रचार करना—नाना बाधा-विपत्ति, दुर्गति-सुगति के बीच भारतवर्ष ने यही किया है।

भारत राष्ट्र सत्यमेव मानवीय संस्कृतियों की प्रयोगशाला रहा है। यहाँ का सब से प्रभावशाली मंत्र समवाय, या समन्वय है। इसी आध्यात्मिक रसायन से भारत में संस्कृतियों के सुंदर, सुखद और प्रीति संयुक्त रूप विकसित हुए। भारतीय संस्कृति की यह साधना कुछ अतीत के साथ ही समाप्त नहीं हो गई। वर्तमान में भी इस संस्कृति की सब से सशक्त अध्यात्म धारा उसी समन्वय के सृजन में संलग्न है। यह विराट् संस्कृति विश्व के मानव-समाज का सब से अधिक चिरन्तन, सफल और आश्चर्य-जनक प्रयोग है। भारतीय संस्कृति के भावमय गंगाजल ने सब भेदों को श्रद्धा से प्रोक्षित किया। भारतीय मानव के मन ने समन्वय और ऐक्य के भाव से आनंद और संतुलन प्राप्त किया। हमारे समस्त राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक प्रयत्न इसी लक्ष्य की प्राप्ति की ओर बढ़ते रहे और अब भी बढ़ रहे हैं। ये ही मातृभूमि के अमर हृदय से उत्पन्न होनेवाले वेग हैं। उत्तर, दक्षिण, पूर्व पश्चिम में इन उध्यात्म वेगों की सहस्त्र धाराएँ अहिर्निश बह रही हैं जो सब के लिए सदा सर्वत्र सुलभ हैं—'सवहिं सुलभ सब दिन सब देशा।' भारत की समुद्रान्त सीमाओं तक संस्कृति की यह साधना नूतन पूर्णता प्राप्त करेगी। इतिहास के अतीत अनुभव अर्वाचीन भारतीय मानव के मन को पुनः प्रेम के विद्युत्स्पर्श से संचालित करेंगे।

इसके अतिरिक्त आज भारतवर्ष को विश्व मानव के साथ संपर्क में आने का नया अवसर मिला है। उस क्षेत्र में भी ऐक्य और समन्वय के ये प्रयोग व्याप्त होते जायेंगे। देश-देश में भारतीय संस्कृति का यह अंतर्यामी सूत्र विस्तृत होगा। इसकी दिव्य सुगन्धि से विश्व मानव का मन सुरभित हो उठेगा। अनेकता में एकता की उपलब्धि यही विश्व मानव की सब से बड़ी सिद्धि कही जाएगी। शम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की नीति से ही यह संभव होगा। पूर्वकाल में भी भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की मूल कुंजी शम की नीति थी। जावा (यवद्वीप), सुमात्रा (सुवर्णद्वीप), बलि द्वीप, बोर्नियो (कलिमन्थनद्वीप), बर्मा (सुवर्णभूमि), कम्बुज, मलय, सिंहल, पुन्नागद्वीप (निकोबार), कूचा (मध्यएशिया), अग्निदेश (कारा शहर), वाल्हीक, कंबोज आदि देश बार-बार भारतीय भूमि की ओर संस्कृति का अपरिमित कोश प्राप्त करने के लिए आकृष्ट होते रहे। क्योंकि भारतीय संस्कृति की पुण्यशाला में शम की अक्षय नीवि से जीवन की धारा प्रवृत्त होती रही। भविष्य के लिए भी भारतीय संस्कृति की यह मूल प्रेरणा रहेगी और भारती प्रजा का यही महान जनायन पंथ होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट

संकल्प

यह संकल्प स्नान-संध्योपासन आदि के साथ नित्य पाठ में प्रयुक्त होता है। इसमें देश की भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता की राष्ट्रव्यापी स्वीकृति पाई जाती है।

हरिः ॐ तत्सदद्य श्री मद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तनास्य श्री ब्राह्मणो ऽह्ने द्वितीय प्रार्द्धे श्री श्वेत वाराह कल्पे वस्तवतमन्वतरे अष्टाविंशतितमें कलियुगे कलि प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे खण्डे भारते वर्षे कुमारिका खण्ड्रे आर्यावर्तैक देशे अविमुक्त वारासी क्षेत्रे आनंदवने भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे विक्रमशके बौद्धावतारे मुकनाम्नि सम्वत्सरे अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक अमुक तिथौ अमुक वासरे मुक शर्माहं ममोपात्त दुरित क्षय द्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं प्रातः व्योपासंन करिष्ये।

अनुवाद

हरि ॐ ही सत्य है। आज दिन महापुरुष भगवान् विष्णु की आज्ञा से प्रवर्तमान, ब्रह्मा जी की आयु के प्रथम दिन के दूसरे प्रहरार्ध में, श्वेत वाराह कलप में, वैवस्वत मन्वन्तर में, अट्ठाइसवें कलियुग के प्रथम चरण में, जम्बूद्वीप में (भरतखंड में), भारतवर्ष में, कुमारिका खंड में, आर्यावर्त के एक भाग में, अविमुक्त देव के वाराणसी क्षेत्र में, आनंद वन में भागीरथी के पश्चिम तट पर, विक्रम संवत् में, बौद्ध अवतार में, अमुक अमुकनाम संवत्सर में, अमुक मास में, अमुक पक्ष में, अमुक तिथि में, अमुक दिन, अमुक नाम का मैं अपने पापाचरण का क्षय करते हुए भगवान् की प्रीति के लिए प्रातःकाल सन्व्योपासन करूँगा।

इस संकल्प का एक वृहत् रूप भी है जिसकी रचना यादवों के मंत्री हेमाद्रि ने की। उसमें भारतवर्ष का भौगोलिक वर्णन, पुण्य पुरी जनपद और नदियों की वृहत् सूची भी सम्मिलित है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञात होता है मूल संकल्प की रचना गुप्तकाल के लगभग हुई जब भारतवर्ष के अंतर्गत वृहत्तर भारत के नौद्वीप भी सम्मिलित माने जाते थे और इस देश का नाम कुमारिका द्वीप प्रचलित हो गया था। संकल्प के उस संस्करण का श्रेय संभवतः पंचरात्र भागवतधर्म को था। गुप्तकाल से भी पूर्व प्रचलित संकल्प की भाषा में 'भारते वर्षे कुमारिका खंडे' ये शब्द जोड़कर नया संकल्प बनाया गया और 'जम्बूद्वीपे भरत खंडे' ये पुराने भौगोलिक संकेत भी पूर्ववत् चलते रहे, यद्यपि दोनों में पुनरावृत्ति है।

❑❑❑

मुद्रक : रैक्मो प्रेस, ओखला, नई दिल्ली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन दिनों राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद विमर्श के प्रमुख विषय हैं। देश की मौलिक एकता का प्रश्न हमारे जीवन-मरण और अस्तित्व का प्रश्न है। विशेषतौर पर भारत जैसा देश जहाँ धार्मिक आस्था, भाषा, जाति, भोजन जैसी असंख्य विविधताएँ हों, वहाँ राष्ट्रीयता का अस्तित्व और अनिवार्यता का विमर्श बेहद प्रासंगिक है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने देश की स्वतंत्रता के कुछ ही वर्षों बाद सन् 1954 में देश की एकता के मौलिक स्वरूप, उसके अतीत और भविष्य पर जो पुस्तक लिखी थी, उसका एक-एक शब्द आज उन कई ऐसी जिज्ञासाओं व भ्रांतियों का निवारण करता है जो महज भूमि या भूगोल की एकता को राष्ट्रीय एकता मानते हैं। भारत एक प्राचीन राष्ट्र है और वह अपने जन और संस्कृति के नूतन विकास का साक्षी बनकर आज भी जीवित है। यह पुस्तक उसी लगभग छह दशक पुरानी पुस्तक की नए तरीके से प्रस्तुति है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का जन्म सन् 1904 ई. में लखनऊ के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ था। उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातक होने के बाद एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण के और साहित्य सृजन आरंभ कर दिया। उनकी विशेष रुचि पुरातत्व विज्ञान में थी। इसी विषय पर उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। वे संस्कृत, पाली तथा प्राकृत भाषाओं के प्रकांड विद्वान थे। वे केंद्र सरकार के पुरातत्व विभाग के संचालक, काशी विश्वविद्यालय के भारती महाविद्यालय में पुरातत्व एवं प्राचीन इतिहास विभाग के अध्यक्ष और बाद में आचार्य रहे। डॉ. अग्रवाल हिन्दी विश्वकोश संपादक मंडल के प्रमुख सदस्य थे। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' में भारत की संस्कृति, कला और साहित्य आदि पर प्रकाश डाला गया है। उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। उनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ हैं– पृथ्वी-पुत्र, कल्पभूमि, माता भूमि, मलिक मुहम्मद जायसी– पद्मावत, हर्षचरित–एक सांस्कृतिक अध्ययन आदि।

nbt.india
एकः सूते सकलम्
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

₹ 150.00
ISBN 812377980-1
9788123779805
16170495

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.